Chapter-6

षष्ठ अध्याय

प्रसाद और न्हानालाल की विचारधाराएं

आमुख :

काव्य-कला के विविध पक्षों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् आलोच्य कवियों के काव्य में अंकित जीवन-विषयक तथ्यों का अध्ययन भी प्रस्तुत अनुशीलन के लिए आवश्यक है। अतः इस अध्याय में दोनों कवियों की विचारधाराएं - यथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना, दार्शनिक पक्ष - प्रेमदर्शन, ब्रह्मदर्शन - बतला कर तुलनात्मक दृष्टि से समानता और असमानता प्रस्तुत की जा रही है। यह अध्याय दोनों कवियों की सामान्य विचार धाराओं से संबंधित है। इस अनुशीलन द्वारा हम सहज ही यह दृष्टिगत कर सकते हैं कि विचारधारा के ये पक्ष दोनों कवियों के योगदान के मूल्यांकन में एक सीमा तक अत्यधिक सहायक हो सकते हैं, जैसा कि परवर्ती विवेचन से प्रकट है।

सामाजिक चेतना :

प्रसाद मानव समाज के निकट रहे हैं अतः वे जीवन से विलग नहीं, समाज का क्रन्दन उनमें है। प्रसाद जन साधारण की वास्तविक स्थिति तक पहुंचकर अपनी यथार्थवादी चेतना का परिचय देते हैं। समाज की रूढ़िगत अंध मान्यताएं, दरिद्रता, असंतोष के चित्र उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो सके। प्रसाद काव्य में नये समाज के निर्माण और लोकमंगल की प्रबल आकांक्षा है। उनमें मंगल विधायक चेतना है। जहां तक प्रसाद के काव्य साहित्य का प्रश्न है यह स्पष्ट है कि उन्होंने वस्तु जगत को विकृत बनाकर प्रस्तुत करने में ही यथार्थ की इतिश्री नहीं समझी, वे आदर्श, नीति, मानवीय करुणा और आत्मा के उन्नयन को भी देखते हैं। उनकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना उन्हें बहुजन हिताय की प्रेरणा देकर मानवीय आचारों-विचारों व आदर्शों की ओर उन्मुख करती है।

प्रसाद ने व्यक्ति की वैयक्तिक और आध्यात्मिक साधना को साथ लेकर पारिवारिक, सामाजिक, और राष्ट्रीय क्षेत्र में अविराम कर्म और जनहित का

संदेश देकर व्यक्तिगत साधना को समाज के लिए कल्याणकारी बनाया। विश्व को पूर्ण सत्य मानकर वे मानवता और समता की घोषणा करते हैं। प्रसाद ने धन, मद, अधिकार, लिप्सा और इन्द्रियता से कलुषित जीवन को धिक्कारा है क्योंकि वे सरल जीवन और तप की महत्ता चाहते हैं। विज्ञानमयी अधिकार प्रमत्त संस्कृति अंत में संघर्ष, विद्रोह और असफलता को जन्म देती है अतः उसे उन्होंने श्रद्धायुक्त करते हुए मानवीय मूल्यों को प्रश्रय दिया है। मनुष्य की सार्वभौमिकता और महत्ता को लेकर वे चले हैं। समाज का निर्माण मनुष्य ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के लिए किया है और अपनी सुविधानुसार उसमें परिवर्तन भी कर सकता है। सभी संस्थाओं का उद्देश्य है मानवों की सेवा। मानवधर्म ही श्रेष्ठतम है। वर्ण, धर्म, देश से परे मानवता स्नेह का सम्बल चाहती है। " प्रसादजी का साहित्य सच्चे अर्थों में नवीन जीवन से सम्बद्ध है और वह आधुनिक समस्याओं को प्रतिबिम्बित करता है। वह साम्प्रतिक जीवन का उन्नायक है। "[1]

यथार्थतः प्रसादजी का काव्य मानवीय भूमि पर खड़ा है। उन्होंने मानव जीवन के सत्य को चित्रित किया है, वे पलायनवादी नहीं हैं। केवल वैज्ञानिक प्रगति और भौतिकवाद उनमें नहीं है।

> " प्रसाद उसी यथार्थवाद को उपादेय मानते हैं जो लोक-मंगल की भावना लेकर चले और जो वेदना और करुणा के व्यापक मानव भाव से प्रभावित हो। वह क्रांति का अग्रदूत होता है। पर केवल विध्वंस में विश्वास नहीं। उसके लिए निर्माण की भूमि ध्वंस की भूमि से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है " [2]

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मानव मूल्यों को समझ कर समस्याओं की व्यंजना और विचार करने की प्रगतिशील प्रेरणा प्रसाद में है। डा० प्रेमशंकर का इसके

---

१ जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, पृ० १

२ प्रसाद की विचारधारा - डा० रामरतन भटनागर, पृ० १२८

विषय में यह दृष्टिकोण उल्लेखनीय है -

" कवि अपने काव्य को मानवीय मूल्यों पर प्रस्तुत करने के प्रयास में सफल हुआ है । व्यष्टि से वह समष्टि पर पहुंचता है " [1]

प्रसाद की आकांक्षा इन पंक्तियों में दृष्टिगत की जा सकती है -

" मुक्त हो मतवाली ममता, खिले फूलों से विश्व अनंत ।
चेतना बने अधीर मिलिन्द, आह वह आवे विमल वसंत । "
(लहर, पृ० २४)

कवि मानव जीवन के आभ्यंतरिक सौंदर्य को महत्त्व देता है । अपना हृदय प्रशान्त बनाकर सृष्टि में जो कुछ अभिराम है, उसे निरखने का संदेश देता हुआ कवि विश्व को अनुराग से रंजित और मानव मन को करुणा से आप्लावित देखना चाहता है-

" अरुण हो सकल विश्व अनुराग,
करुण हो निर्दय मानव चित्त,
उठे मधु लहरी मानस में,
फूल पर मलयज का हो वास । "
(झरना, पृ० ६४)

कवि का यह भाव जगत देश व्यापी जीवन-सरणियों को लेकर चला है । इससे यह सिद्ध होता है कि कवि मानव गरिमा और मानवीय मूल्यों को प्रस्तुत करता हुआ समष्टि चिंतन पर ध्यान देता है । कवि अंध विश्वासों, जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं, स्वार्थ परायणता और पापों पर आवरण डालने हेतु प्रार्थना जैसे आडम्बरों और ढोंगों पर क्षुब्ध हो " आदेश " देता है ।

---

१ प्रसाद का काव्य, डा० प्रेमशंकर, पृ० २०७

" प्रार्थना और तपस्या क्यों ?
पुजारी है कैसी यह भक्ति ।
डरा है तू निज पापों से,
इसी से करता निज अपमान । "

(झरना, पृ० ७६)

कवि प्रार्थना के बदले दीन हीन जनों पर करुणा करने का संदेश देता है । वास्तव में प्रसाद साहित्य में दीन वर्ग के प्रति गहरी संवेदना है । मानवता ही अंतिम ध्येय है जिसकी साधना देवत्व से भी कठिन है । वे मानव तत्त्व को देवत्व से ऊपर प्रतिष्ठित करते हैं । वे जीवन को विश्व की सम्पत्ति मानते हैं । कवि अमावस्या को सुंदर राका बनाना चाहता है । प्रसाद का ध्यान आधुनिक युग की आर्थिक विडम्बनाओं पर भी रहा है । प्रसाद में अपने युग के प्रति व्यापक सजगता प्रचुर मात्रा में पाई जाती है और इसीलिए उन्हें " भविष्य द्रष्टा और आगम का विधायक कलाकार " कहा गया है । प्रसाद ने उस धर्म को त्याज्य माना है जो भीति, कुत्सित नीति और कुटिल भावों का प्रचारक हो -

बांधती हो जो विविध सद्भाव, साधती हो जो कुत्सित नीति
मग्न हो उसका कुटिल प्रभाव, धर्म वह फैलायेगा भीति
भीतिका नाशक हो तब धर्म
नहीं तो रहा लुटेरा कर्म "

(कानन कुसुम, पृ० १४)

कवि उन्हीं युवकों के चिरंजीवी होने की कामना करता है जो कर्मण्य हैं । प्रसाद जी बुद्ध की करुणा और सर्वभूत हित सिद्धान्त को मानते हैं । वे व्यक्त निष्ठ धरातल लेकर भी समष्टिगत व्यापकता लिए हुए हैं ।[1] कवि पीडा, घृणा, मोह, वंचकता

---

१ नंददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० ७ (भूमिका)

आदि के बिखरे अंधकार पूर्ण जीवन में मानव प्रेम की महत्ता प्रतिष्ठित करता है। मानवीय सहानुभूति इस प्रेम की मूल है।

> " प्रसादजी तो विकासशील और उदार सामाजिक प्रवृत्तियों के निरूपक हैं। उनकी साहित्य सृष्टि एक आशावादी और स्वातंत्र्य-प्रेमी युग की प्रतिनिधि है। साहित्यिक अर्थ में उनका साहित्य सर्वथा प्रगतिशील है। "

प्रसाद जी मानवतावादी थे और समस्त विश्व में मानव की उत्तम भावनाओं का प्रसार करते हुए सर्वत्र एकता, समता, भ्रातृभाव, समन्वयशीलता, विश्वबंधुत्व आदि की स्थापना करना चाहते थे। ये उनके सामाजिक आदर्श थे। प्रसादजी की यही सामाजिक चेतना उनके काव्यों में यत्र तत्र प्रस्फुटित है। उनका महाकाव्य " कामायनी " तो ऐसी सामाजिक चेतना का पूरा पारावार ही प्रतीत होता है।

" कामायनी " में नर-नारी, व्यक्ति समाज, राष्ट्र-अन्तर्राष्ट्र यथार्थ-आदर्श, अतीत वर्तमान, दर्शन मानवता, भौतिकता-आध्यात्मिकता पूर्व-पश्चिम, शासक-शासित, अर्थ-काम, धर्म और मोक्ष का सामयिक एवं शाश्वत सामंजस्य निर्दिष्ट करते हुये अखिल भावों के सत्य-प्रेम का प्रतिपादन किया गया है। पारस्परिक जीवन व्यवहार में सहृदयता, सम्वेदनशीलता, समता और आध्यात्मिक एकता को लेकर चलने से ही मानवता विजयी हो सकती है।[1]

प्रसाद के काव्यों में सामाजिक चेतना प्रचुरता से मिलती है। समाज, व्यक्तियों से बनता है। व्यक्ति के मुख्य दो उपादान होते हैं - नर और नारी। अर्थात् समाज पुरुषों और स्त्रियों का व्यवस्थित समूह है। प्रसाद जी ने अपने

ooooooooooooooooo

1 गंगाप्रसाद पांडेय, बीसवीं शती की श्रेष्ठतम काव्यकृति

काव्यों में नर और नारी संबंधी चेतना प्रतिपादित की है और एक-दूसरे के पूरक बतलाये हैं इतना ही नहीं, नारी गौरव और नारी महत्ता का यशोगान किया है, यथा –

" नारी । तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में " [1]

इससे प्रकट है कि नारी का भावात्मक प्रभाव अद्वितीय होता है । दूसरी विशेषता यह बतलाई है कि दोनों के पवित्र त्यागमय प्रेम और जीवन की व्यवस्था होनी चाहिए । नारी का जीवन वासनापूर्ति के लिये नहीं अपितु व्यवस्थापूर्ण होना चाहिए यह संस्कृत समाज का मूल्यांकन है । प्रसाद का नारी के प्रति मूल दृष्टिकोण आदर्शात्मक ही है । उनके विचार से नारी सर्वमंगला, कल्याणी शक्ति है, वह मानव की जननी-धात्री, प्रथम अध्यापिका व समाज का आधार स्तंभ है । वही घर की शोभा है ।

गृहस्थ का जीवन परोपकारी और मानवसेवाभावी होताहै । मानव-सेवा के दिव्य आदर्शों को सूचित करती अनेक पंक्तियाँ कामायनी में भरी पड़ी हैं । यथा –

" औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ "
" रचना मूलक सृष्टि यज्ञ यह यज्ञ-पुरुष का जो है
संसृति सेवा भाग हमारा उसे विकसने को है "

सुख अपने संतोष के लिए संग्रह मूल नहीं है
उसमें एक प्रदर्शन जिसको देखें अन्य, वही है
निर्जन में क्या एक अकेले तुम्हें प्रमोद मिलेगा ?
नहीं इसीसे अन्य हृदय का कोई सुमन खिलेगा "

---

1 कामायनी, पृ० ११४, लज्जा सर्ग

सुख समीर पाकर, चाहे हो वह एकांत तुम्हारा,
बढ़ती है सीमा संसृति की बन मानवता धारा " [1]

उदाहरणार्थ ये पंक्तियां " कामायनी " में से उद्धृत की है । प्रसाद जी की सामाजिक चेतना पूर्ण मानवतावादी, आदर्श, और उच्च विचारों से परिवेष्ठित थी क्योंकि वे भारत और भारतीय संस्कृति में दृढ अपूर्व और महान विश्वास रखते थे ।

समाज में जीवित रहनेवाले नर, नारी पुरुषार्थी, आशावादी और " अपनी कुदाल अपने हाथ में लेकर अपना रास्ता अपने आप बनाने वाले " बने । इस बात की कवि ने यत्र तत्र उत्तेजना दी है, यथा –

आशावादिता – कहा आगंतुक ने स स्नेह –

" अरे, तुम इतने हुए अधीर ।
हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मरकर जिसको वीर । " (कामायनी, पृ० ६९३)

तप नहीं केवल जीवन सत्य करुण यह क्षणिक दीन अवसाद,
तरल आकांक्षा से है भरा सो रहा आशा का आल्हाद ।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण मिलते हैं ।

पुरुषार्थपरता :

" कर्म यज्ञ से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा,
इसी विपिन में मानस की आशा का कुसुम खिलेगा ।
" तरुण तपस्वी-सा वह बैठा, साधन करता सुर-श्मशान
नीचे प्रलय सिंधु लहरों का होता था सकरुण अवसान " [2]

१ कामायनी, पृ० १४०–१४२ (२) वही, पृ० ११

सिक्ख थे सजीव -
स्वत्व रक्षा में प्रबुद्ध थे। जीना जानते थे।
मरने को मानते थे सिक्ख। किन्तु आज उनकी अतीत वीर गाथा हुई " [1]

उपर्युक्त उदाहरणों से प्रकट है कि सामाजिक चेतना के अंतर्गत कवि प्रसाद ने यत्र तत्र अपने काव्यों में आशावादिता और पुरुषार्थपरता के भाव उभारे हैं। ये उनके वैयक्तिक जीवन से संबंधित उपकरण थे क्योंकि उन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों में ही अपनी जीवन नौका गतिशील और प्रगतिशील रखी थी।

आचरण की दृढ़ता में कवि को पूर्ण प्रतीति थी और इसीसे मनुष्य शुभ कार्य करता है और उनके ही शब्दों में " विजयिनी मानवता हो जाय " सफल उतरता है। " कामायनी " का प्रारंभ ही कविने दृढ़ आचरण शीलता की शिथिलता के परिणाम से किया है। देव जाति जब विलासी बनी और कर्म धर्म छोड़ दिये। आचरण भ्रष्ट हुए तब " प्रलय " हुआ भावार्थ यह है आचरण दिव्य और महान उपादान है जिसके अभाव में सर्वनाश अवश्यभावी होता है। दुराचारी मनुष्य, गति, प्रगति नहीं कर सकता और उसका विनाश होता है।

मनुष्य को जीवन में सदाचार को अपनाकर, शील और सौन्दर्य का स्वागत कर शक्ति से पुरुषार्थ से आगे बढ़ना चाहिए यह एक सामाजिक चेतना है -

" यह नीड मनोहर कृतियों का, यह विश्व कर्म रंगस्थल है ;
है परंपरा लग रही यहां ठहरा जिसमें जितना बल है।

वे कितने ऐसे होते हैं जो केवल साधन बनते हैं
आरंभ और परिणामों के सम्बन्ध सूत्र से बनते हैं। " [2]

सामाजिक चेतना के अंतर्गत स्थान स्थान पर स्व का " उत्सर्ग " पर के लिये होना

oooooooooooooooo

१ लहर, पृ० ५१ (२) कामायनी, पृ० ८१

चाहिए । कवि ने " भारत वर्ष " कविता में बतलाया है कि :-

" चरित के पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सेवा सम्पन्न ।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न । "[1]

और मानवता की सीख दी है जो सामाजिक चेतना के बड़े महत्त्वपूर्ण उपकरण है ।

सामाजिक चेतना युग-सापेक्ष रहती है । प्रसाद ने अपने काव्यों में जो सामाजिक चेतना या जागृति लाई है वह उस युग के लिये ही नहीं अपितु प्रसादोत्तर युग के लिये भी फलदायी है । डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना ने युग युगीन काव्य के जो तत्त्व बतलाये है वे इस प्रकार है :-

(१) मानव-जीवन के शाश्वत सत्यों का उद्घाटन,
(२) सत्-असत् प्रवृत्तियों के संघर्ष का चित्रण,
(३) आदर्श और यथार्थ के समन्वित स्वरूप का निरूपण,
(४) नारी-जीवन की महत्ता का प्रतिपादन,
(५) भूतकाल के साथ वर्तमान एवं भविष्य का भी समावेश,
(६) अंतःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का सुंदर सामंजस्य,
(७) पारस्परिक सहानुभूति, समता विश्व-बंधुत्व आदि का वर्णन,
(८) लोकहित एवं लोकानुरंजन की प्रवृत्ति,
(९) भाव, रूप और कर्म-सम्बन्धी सौन्दर्य का दिग्दर्शन,
(१०) उदात्त कल्पना, गहन अनुभूति एवं अनुभवों की प्रौढता का उल्लेख,
(११) रसानुकूल भव्य एवं उत्कृष्ट शैली का प्रयोग,
(१२) किसी महान उद्देश्य का निरूपण ।[2]

---

१ प्रसाद-संगीत, पृ० ११२ (स्कन्द गुप्त)

२ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य-संस्कृति और दर्शन, पृ० २७०

इन बारह तत्त्वों के अंतर्गत क्रमांक १,२,४,७,८,१२ सामाजिक चेतना के अंतर्गत आ सकते हैं। दूसरे भावपक्ष और कलापक्ष के अंतर्गत समाविष्ट कर उनका काव्य सौंदर्य अध्याय ४ और ५ में बतलाया है।

मानव, समाज में रहता है। मानव के सुख दुःख समाज के सुख दुःख होते है क्योंकि मानव में मानवता रहती है। मनुष्य मात्र में चिन्ता, आशा, श्रद्धा, वासना, लज्जा, क्रोध, निर्वेद आदि शाश्वत भावनाएं रहती है। कवि ने इन भावनाओं को मनोवैज्ञानिक रूप दिया है साथ ही साथ वे सामाजिक चेतना के भी अंग, उपांग बन कर आई है जैसे मानव चिन्तित होता है तो उसे आशा बंधती है आशा बांधने के कारण वह आशावादी बनता है, श्रद्धावान बनता है नारी के प्रभाव से - आलंबन उद्दीपन के कारण वासना उत्पन्न होती है और क्रमशः क्रोध, निर्वेद से यात्रा करता हुआ अंत में आनंद प्राप्त करता है जिसका अलग से वर्णन "दर्शन" वाले भाग में किया है। ये मानव जीवन के शाश्वत सत्य-सामाजिक चेतना में गतिशीलता लाते हैं और इन्हीं सत्यों के कारण व्यक्ति और समाज गति प्रगति करता हुआ आगे बढ़ता है।

युगयुगीन जागृति का संदेश श्रद्धा के शब्दों में -

" और यह क्या तुम सुनते नहीं, विधाता का मंगल वरदान
शक्तिशाली हो, विजयी बनो " विश्व में गूंज रहा जय गान "
डरो मत अरे अमृत संतान अग्रसर है मंगलमय वृद्धि
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र खिंची आवेगी सकल समृद्धि। " [1]

ये वाक्य कितने सशक्त, और भावप्रेरक है। सामाजिक चेतना की पूरी शक्ति इन पंक्तियों में भरी हुई है। सामाजिक चेतना के विकास के लिये कवि ने यत्र तत्र उदारवादिता, एकता, समन्वय और समरसता प्रतिपादित की है। कवि ने चेतना के

१ कामायनी, पृ० ५५, श्रद्धा सर्ग

विकास के लिये भौतिकता और आध्यात्मिकता, प्रवृत्ति और निवृत्ति, भोग और त्याग, बुद्धि और हृदय का समन्वय साध कर भिन्नता में एकता स्थापित की है जो सामाजिक चेतना का मुख्य अंग है।

सामाजिक चेतना में गति लाने के लिये प्रसाद जी ने बुद्धि और भावना का सामंजस्य कर के मानव मात्र में व्यापक जीवन दृष्टि की स्थापना की है यही सामाजिक चेतना का मूल मंत्र है। सामाजिक चेतना के अन्य तत्त्व नारी जीवन की महत्ता और अहिंसा। इसके संबंध में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि –

" बौद्ध-कालीन चरित्रों के अध्ययन से प्रसाद जी ने एक मुख्य वस्तु निकाली नारी-शक्ति का सम्मान, दूसरी अहिंसा अर्थात् पतितों के प्रति करुणा का भाव। बिना करुणा के सहानुभूति के – हम किसी के अन्तस्थल में प्रवेश नहीं कर सकते। करुणा का धार्मिक स्वरूप है पर के लिए त्याग करना। प्राचीन साहित्य का विलोडन प्रसाद जी का साध्य नहीं है, वह साधन मात्र है। प्राचीन कथावस्तुओं का ग्रहण मुख्यतः इस अभिप्राय से है कि हम उस समय की उन्नतिशील और सर्वतोमुखी चेतना को देखें और उसमें जो कुछ लेने लायक है, उसे लें। रूढ संस्कारों और विचार-पद्धतियों को तोडकर नवीन विचार-स्वातंत्र्य, उदारता और मानवीयता का शिलान्यास प्रसाद जी ने किया। आधुनिक समानता और जनसत्तात्मक भावों का पूरा प्रभाव प्रसादजी के साहित्य में है। कोरे आदर्श-स्थापन को छोडकर वे नवीन वास्तविकता की ओर कई कदम आगे बढ़े हैं " [1]

ooooooooooooooooo

1 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, पृ० ७०–७१

सामाजिक चेतना के अंतर्गत व्यवस्थित और सुखपूर्ण दाम्पत्य-जीवन का बड़ा प्रभाव रहता है। वही प्रसाद ने मनु और श्रद्धा के माध्यम से बतलाया है। प्रसाद का साहित्य मानव जीवन से ओतप्रोत है और मानव समाज का अभिन्न अंग है। " जीवन दृष्टि की देन " शीर्षक लेख में डा० रामेश्वरलाल खंडेलवालजी ने लिखा है कि -

" प्रसाद के प्रदेय के विशिष्ट बिन्दुओं में से एक प्रमुख बिन्दु है जीवन-दृष्टि की देन। " प्रसाद " का इष्ट मानव जीवन में चेतना आनंद की प्रतिष्ठा करना है, और ऐसा आनंद स्वस्थ जीवन दृष्टि की ही उपज हो सकता है। सुपक्व भावुकता, प्रकाशवान बौद्धिकता और आत्मिक उल्लास से प्रेरित कर्मशीलता के सुन्दर सामंजस्य में ही स्वस्थ व परिपूर्ण जीवनदृष्टि का उन्मेष होता है। जो कवि जीवन की व्यापक, समग्र व परिपूर्ण चेतना से आस्फूर्त है, वही परिपूर्ण जीवन-दृष्टि का दान दे सकता है। प्रसाद ने सांस्कृतिक जीवन-दृष्टि को लेकर मानव-जीवन की व्याख्या की है। " प्रसाद " जीवन-कला के आचार्य है। उन्होंने व्यक्ति के धरातल पर अपना निज का, समाज के धरातल पर अपने युग का और इतिहास के धरातल पर मानव-जीवन का गहन अनुशीलन किया है। " आँसू ", " कंकाल ", " इरावती ", कामना और कामायनी नामक कृतियाँ इस कथन के प्रमाण हैं। कृत्रिम जीवन-दृष्टियों से मुक्त करके उन्होंने मानव को प्राकृतिक, स्वस्थ व यथार्थ जीवन दृष्टि दी है। इस दिशा में उन्होंने गम्भीर व मीठी क्रान्ति करके मानव की सांस्कृतिक पुनर्रचना में भव्य योगदान किया है। कला की पद्धति से उन्होंने यह कार्य अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। "[1]

1 डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, जयशंकर प्रसाद: वस्तु और कला, पृ० ४६०-६१

समाज में शताब्दियों से अबुध मूल जडताएं व कुरीतियाँ विद्यमान थीं। प्रसाद जी ऐसे अंधविश्वासों का, कुरीतियों का और ढकोसलों का विनाश कर समाज का सर्वांगीण विकास चाहते थे। गुरुकुल की प्रथाएं और रीतिरिवाज की शृंखलाओं से व्यक्ति मुक्त होकर सुष्ठु समाज की स्थापना करे जिसमें स्वतंत्रता, समानता, बंधुता का पूर्ण रूप से विकास हो सकें। प्रसाद जी ने समाज तथा उसकी बहुमुखी समस्याओं पर विचार करके उसे समुन्नत व आदर्श बनाने का हार्दिक प्रयत्न किया है। प्रसाद के साहित्य ने समाज में एक नवीन जागृति का संचार किया है। उनकी दृष्टि में वही समाज आदर्श समाज है जो मानव की आत्मानुभूति में सहायक हो और मानव को यह अनुभूति समाज के बीच में ही प्राप्त होगी बाहर नहीं। [1]

प्रसाद के काव्यों में विशेषतः कामायनी में सामाजिक चेतना के पूरे उपकरण अति प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। गृहस्थ धर्म का उत्तरदायित्व छोडकर मनु चला जाता है और सारस्वत नगर में उसकी जो दुर्दशा होती है वह एक प्रतीक के रूप में समाज को सीख दी है कि कोई भी गृहस्थ, गृहस्थाश्रम का हनन न करें वह बडा भारी पाप है। उत्तरदायित्व निबाहना यह पुण्य है और उत्तरदायित्व छोड कर भाग जाना बडा पाप है। यह बडी भारी सामाजिक चेतना है जो प्रसाद जी ने मनु और श्रद्धा के माध्यम से व्यक्त की है। अव्यवस्थित निराशावादी और घायल मनु को जब श्रद्धा स्वप्न के बाद मिलती है और उसे गृहस्थजीवन में व्यवस्थित बनाती है। इस व्याज से यह चेतना जागृत की है कि नारी में कितनी शक्ति, कितनी सहनशीलता और कितना औदार्य होता है कि भूले-भटके गुमराह पति को वह जीवन जीने की राह पर लाती है। इस घटना के माध्यम से नारी शक्ति का परम मूल्यांकन किया है और पुरुष अपनी भूलों के कारण नारी के सामने कितना निरीह और विवश बन जाता है, यथा -

" श्रद्धा नीरव सिर सहलाती आंखों में विश्वास भरे,
मानो कहती " तुम मेरे हो अब क्यों कोई वृथा डरे ? "

००००००००००००००००

१ विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य - डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, जयशंकर प्रसादः वस्तु और कला, पृ० १२

जल पीकर कुछ स्वस्थ हुए से लगे बहुत धीरे कहने,
" ले चल इस छाया के बाहर मुझको दे न यहाँ रहने ।
मुक्त नील नभ के नीचे या कहीं गुहा में रह लेंगे,
अरे भेलता ही आया हूँ जो आवेगा सह लेंगे । "
ठहरो कुछ तो बल आने दो लिवा चलूंगी तुरत तुम्हें,
इतने क्षण तक " श्रद्धा बोली -
" रहने देंगी क्या न हमें? " [1]

उन्होंने नारी की आत्मा में उतर कर उसका नीरव क्रन्दन बहुत ध्यान से सुना और उसके उद्धार के लिये यत्र तत्र सीख भी दी है । प्रसाद जी की रचनाओं में क्रान्तिकारी समाजवादी विचारधारा का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है । इस प्रकार " प्रसाद जी " सामाजिक चेतना से सम्पन्न दिखाई पड़ते हैं । डा० रामविलास शर्मा लिखते हैं - " वे एक वर्गहीन साम्ययुक्त समाज-व्यवस्था के समर्थक थे, इसका स्पष्ट संकेत उनकी रचनाओं में मिलता है । उनका सामाजिक दृष्टिकोण उनके दार्शनिक विचारों का पूरक है ।" [२] एक रहस्यवादी-रोमाण्टिक साहित्यकार के चिंतन में भारतीय विधान द्वारा स्वीकृत समाजवादी प्रजातांत्रिक मूल्यों के समावेश का यह तथ्य उनके व्यक्तित्व को निश्चय ही एक अतिरिक्त और गहरा आकर्षण प्रदान करता है और यथार्थ की भूमियों पर भी " प्रसाद " के पुनर्परीक्षण और पुनर्मूल्यांकन का आह्वान करता है । [३]

प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना :

प्रसाद ने अतीत के स्वर्ण युग का सहारा लेकर पुनरुत्थान परक

१ कामायनी, निर्वेद सर्ग, पृ० २२७-२२८
२ जनभारती (कलकत्ता), " प्रसाद-अंक ", भाग-२, पृ० ६६
३ डा० रामविलास शर्मा, कामायनी

भावनाओं द्वारा राष्ट्रीय जागरण का शुभारंभ किया । अतीत के गौरव का बोध उन्हें सब से अधिक था । उन्होंने आत्म गौरव का ओजस्वी उद्बोधन देकर वर्तमान पराधीन देश को नई जागृति व चेतना के स्वर दिये । अतीत की पृष्ठभूमि पर विजय की आकांक्षा लेकर उन्होंने वर्तमान विभाजित जाति को एक सूत्र में आबद्ध किया । अतीत की प्रेरणा स्रोत के रूप में ग्रहण कर उन्होंने इतिहास और परम्परा का उपयोग अपने युग की समस्याएं सुलझाने हेतु किया । उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों और काव्यों द्वारा यही जातीय व राष्ट्रीय जागरण का कार्य किया । व्यंजना भले अतीत की हो पर व्यंग्य वर्तमान ही है ।

राष्ट्रीय काव्यधारा तीन रूपों में दिखलाई देती हैं । प्रथम प्रकार गांधीवादी प्रभाव को लेकर चलता है जिसमें सत्य, अहिंसा, प्रेम, बलिदान आदि भावनाओं की प्रधानता है । दूसरी धारा समाजवादी और मार्क्सवादी आदर्शों की पृष्ठभूमि में पनपी है और तीसरी धारा क्रान्ति को लेकर चली है जिसमें तीव्रता और प्रखरता है । नये निर्माण के स्वर और भविष्य के प्रति मंगल कामना भी इस काव्य धारा का महत्वपूर्ण पहलू है ।

छायावादी राष्ट्रीय काव्य धारा भावात्मक रूप में देश के सांस्कृतिक उपादानों को लेकर चली है और प्रसाद जी उसमें अग्रगण्य हैं । उनकी राष्ट्रीय कविताओं का प्रगतिशील स्वरूप युगीन समस्याओं के साथ अपनी अभिन्नता के कारण तब ग्राह्य था और आज भी है ।

प्रसादजी हमारे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के अग्र-पुरुष थे । छायावाद के विशिष्ट कवियों ने भारत की सांस्कृतिक धरोहर के संदर्भ में नये उन्मेष के रचनात्मक स्वरूपों का चित्रण किया है । " यह बिलकुल सही बात है कि प्रसाद जी की भावुकता की मूल भित्ति मानव संबंधों के दृढ़ आधार पर खड़ी हुई है । इन्हीं संबंधों के सामाजिक-राष्ट्रीय विस्तार के फलस्वरूप उन्होंने प्राचीन भारतीय गौरव के ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत किये और उसमें हमारे प्रथम भारतीय

राष्ट्रीय जागरण में स्पंदनों की बेला हमारे सामने आई । " [1]

प्रसाद जी ने अतीत दर्शन की स्वस्थ मान्यताओं को स्वीकार कर व्यवहारिक जीवन के विविध स्वरूपों को ग्रहण करते हुए भारतीय संस्कृति के गौरव का उद्घाटन किया है । उन्होंने अतीत का वर्तमान से और यथार्थ का अध्यात्म से सामंजस्य करते हुए मानवतावादी भूमिका प्रस्तुत की है । उनके आत्मगत व्यक्तित्व में सामाजिक व्यक्तित्व के सभी तत्त्व सन्निहित हैं । उन्होंने परम्परा और नवीन दोनों को एक साथ लेकर अपने काव्यों में अतीत दर्शन की उच्चतम भावभूमियों को अपना कर पाश्चात्य प्रभावों को भी ग्रहण किया है । " इसमें भावात्मक आदर्शवाद के अनुरूप ही क्रान्तिमूलक राष्ट्रीय ध्वनि का इतिहास मिलता है जो नूतन संस्कृति की भूमिका बन कर व्यक्त हुआ है । " [2]

प्रसाद के राष्ट्रीय भावना-सम्पन्न गीत उच्चकोटि के मानवीय और सांस्कृतिक संवेदनों को देश की भाव प्रतिभा के रूप में संजोते हैं । मानववाद की विराट भावना ने देश प्रेम की प्राचीन संकीर्ण परिधि से ऊपर उठकर एक विस्तृत क्षितिज की ओर दृष्टि केन्द्रित की है ।

> " अरुण यह मधुमय देश हमारा ।
> जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।
> सरस तामरस गर्भ विभा पर - नाच रही तरुशिखा मनोहर ।
> छिटका जीवन हरियाली पर - मंगल कुंकुम सारा ।
> लघु सुरधनु से पंख पसारे - शीतल मलय समीर सहारे ।
> उड़ते खग जिस ओर मुंह किये - समझ नीड़ निज प्यारा ।
> बरसाती आंखों के बादल - बनते जहां भरे करुणा जल ।
> लहरें टकरातीं अनन्त की - पाकर जहां किनारा ।

---

१ कामायनी : एक पुनर्विचार - मुक्तिबोध, पृ० ९२-९४

२ छायावाद : स्वरूप और व्याख्या - राजेश्वर दयाल सक्सेना, पृ० २५

हेम कुंभ ले उषा सवेरे – भरती ढुलकाती सुख मेरे ।
मदिर ऊँघते रहते जब – जग कर रजनी भर तारा "

(चन्द्रगुप्त, पृ० ६१)

प्रसादजी ने अतीत के दर्पण में वर्तमान की समस्याएं देखीं । वास्तव में वे मानव के चतुर्दिक विकास को लेकर चले हैं । यथार्थतः उन्होंने अपने युग में होनेवाले आंदोलनों का भावात्मक रूप से साथ दिया है । उनकी देशभक्ति गहरी और गंभीर है । "

प्रसाद का साहित्य भारत की भव्यता, महत्ता और धर्मप्राणता से भरा है । त्याग, बलिदान और सम्मान की भावनाएं सिखलाकर वे विश्वप्रेम का सन्देश देते हैं । " भारतवर्ष " शीर्षक कविता इस तथ्य को प्रमाणित करती है । इसके अतिरिक्त " पेशोला की प्रतिध्वनि " और " शेरसिंह का शस्त्र समर्पण " शीर्षक कविताएं भारत के गौरव से अनुप्राणित हैं । समसामयिक आंदोलनों का जो भावात्मक उत्कर्ष राष्ट्रप्रेम के रूप में उनके काव्य में दिखलाई पडता है, वह चिरंतन है और उनके काव्य की प्रगतिशीलता का परिचायक है ।

प्रसाद ने इतिहास के भग्नावशेषों में अतीत की गौरव गाथाएं खोजी हैं । ऐतिहासिक घटनाओं के द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं का सफल प्रकाशन हुआ है । " महाराणा का महत्त्व " एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें राष्ट्रप्रेम की भावना निहित है । प्रताप भारतीय शौर्य और देशप्रेम के प्रतीक माने जाते हैं । वे कर्म-साधना-लीन मानव हैं, वीरता के आदर्श, आर्य जाति के तेज और सत्य के उपासक हैं । प्रसादजी अपने राष्ट्र गौरव के प्रति सदा जागरुक रहे जिसका प्रकाशन यहां मिलता है । उन्होंने एक विदेशी के मुख से प्रताप का यशोगान कराया है –

" सच्चा साधक है सपूत निज देश का
मुक्त पवन में पला हुआ वह वीर है "

(महाराणा का महत्त्व)

महाराणा प्रताप के वीरत्वपूर्ण देशप्रेम को प्राथमिकता देकर उन्होंने इस कृति को राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कर दिया है । प्रताप को उन्होंने महिमा-मंडित, काव्य से हर्षित, आर्य जाति के तेज, विपुल कलपूर्ण करुणा मिश्रित वीर भाव से सुशोभित देशभक्त के रूप में चित्रित कर हमारी सांस्कृतिक गरिमा को चित्रित किया है । प्रताप का उदार क्षत्रियोचित और मनस्वी संदेश कि " स्त्री को क्षात्रिय देते दुख नहीं " । उनके हृदय की विशालता का द्योतक है जो भारतीय संस्कृति के आदर्शों के अनुरूप भी कहा जा सकता है ।

राष्ट्र वीरों के अंतर में शूरता, वीरता, क्रान्ति और उत्सर्ग से पूर्ण कविताएं " प्रसाद-संगीत " में नाटकों में से चुने हुए गीतों में द्रष्टव्य हैं । उस दासता के युग में भी प्रसाद के काव्य राष्ट्रभावना के उद्गीथ है जो आज की युग वाणी को भी समेटे हुए है । उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं -

" विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम ।
भिक्षु होकर रहते सम्राट दया दिखलाते घर घर घूम ।
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं
चरित के पूत, भुजामें शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न ।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न " [1]

इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत प्रसाद के नाटकों के गीत और काव्यों के गीत प्रतीत होते हैं । प्रसाद ने राजनीति में कहीं भी अन्याय या असत्य को प्रश्रय नहीं दिया है । उनकी राजनीतिक विचारधारा विश्वबंधुत्व की भावना से भरी है । प्रसाद जी ने मानवता की भावना से रहित राजनीति की सर्वत्र निन्दा की है, वे अधिकार व सत्ता को प्रोत्साहन नहीं देते । अधिकार के साथ साथ वे मानव धर्म क्या है यह भी सूचित करते है, भावार्थ यह है कि प्रसादजी की राष्ट्रीय चेतना

1 प्रसाद, संगीत, पृ० ११२ (स्कन्द गुप्त से)

विध्वंसवादी नहीं अपितु मानवतावादी है । डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल के अनुसार

" प्रसादजी राजनीति के स्वच्छ रूप को ग्रहण कर आत्म-कल्याण
के लिए उसका उपयोग वांछित समझते हैं और जीवन के एक सच्चे
कलाकार की तरह उसके विकृत रूप से बच कर स्वच्छ व उदात्त मानव
भूमिका पर रह कर ही जीवन का रस-रहस्य ग्रहण करने की गूढ़
मंत्रणा देते हैं " [1]

अंग्रेजों की उस पची हुई दासता के युग में भी प्रसाद जी ने मानवतावादी राष्ट्रीय चेतना को विकसायी थी । प्रसादजी " किसी को देख न सकें विपन्न " की भावना में मानते थे और उस दृष्टिकोण से उनका स्वतः का जीवन भी था । राष्ट्रीय चेतना से पूर्ण पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" विश्व-क्रीडा क्षेत्र है विश्वेश हृदय उदार का
रण-विमुख होगे, बनोगे वीर से कायर कहो
मरण से भारी अपस क्यों दौड कर लेना कहो
उठ खडे हो, अग्रसर हो, कर्मपथ से मत टरो
क्षत्रियोचित धर्म जो है युद्ध निर्भय हो करो "[2]

मानव समाजों का समूह राष्ट्र है । मानवों का समूह समाज है " मैं " और " मेरा राष्ट्र " यह बहुत पवित्र और श्रेष्ठ भावनाएं हैं । ये ही भावनाएं प्रसाद ने यत्र तत्र जगाकर भारतीयों को दासता की बेडियां तोड कर स्वतंत्र होने की सीख दी है । प्रसादजी स्वतंत्रता को मानव अधिकार मानते थे । और उसे प्राप्त करना धार्मिक कार्य समझते थे फिर भले ही उसमें हिंसा को अपनानी पडे -

---

१ डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला, पृ० १०२

२ प्रसाद, कानन कुसुम, पृ० ११६

" ईंटों से चुन दिये गये आकंठ थे
बाल बराबर भी न भाल पर, बल पड़ा -
जोरावर औ फतहसिंह के, धन्य हैं -
जनक और जननी इनकी, यह भूमि भी "[1]

जो आज के युग की समाजवाद की भावनाएं हैं वे सब भावनाएं कामायनी के सर्ग " संघर्ष " और " निर्वेद " में स्पष्ट हैं । भारत में पुराने जमाने में राजतंत्र था, लेकिन यहां के राजा " भिक्षु हो के रहते सम्राट, दया दिखलाते घर घर घूम " की वृत्ति के कारण वे पूरे समाजवादी थे । यदि राजा अत्याचारी और अन्यायी बन जाय तो उसका विनाश करना धार्मिक कार्य है । उदाहरण के लिये " मनु का विनाश करने के लिये सारस्वत नगर के प्रजाजन इकत्र हो गये थे । यही राष्ट्रीय चेतना कामायनी में बतलाई है । यथा -

" शासन की यह प्रगति सहज ही अभी रुकेगी ।
क्योंकि दासता मुझ से अब तो हो न सकेगी ।
मैं शासक, मैं चिर स्वतंत्र, तुम पर भी मेरा
हो अधिकार असीम, सफल हो जीवन मेरा । "[2]

" आज साहसिक का पौरुष निज तन पर खेलें,
राज दंड को वज्र बना सा सचमुच देखे "[3]

राष्ट्रीय चेतना के अंतर्गत वीरता, आशावादिता आदि तत्त्व आ जाते हैं । प्रसाद ने यत्र तत्र वीरता और आशावादिता के उपकरण बिखेरे हैं, यथा -

१ प्रसाद, कानन कुसुम ,वीर बालक, पृ० १३१
२ प्रसाद, कामायनी, पृ० २०६
३ प्रसाद, कामायनी, पृ० २०८

" साधना पिशाचों की बिखर चूर-चूर होके
धूलिसी उडेगी किस हात फूत्कार से ।
कौन लेगा भार यह ? जीवित है कौन ? सांस चलती है किसकी
कहता है कौन ऊंची छाती कर, मैं हूं - मैं हूं - मेवाड में
अरावली शृंग-सा समुन्नत सिर किस का ? " [1]

प्रसाद का स्वदेश-प्रेम उनके सभी काव्यों में विद्यमान है किन्तु " कामायनी " में वह परम उत्कर्ष पर पहुंचा है । यहां उषा, हिमालय, कैलाश, नदी, निर्झर ये प्राकृतिक सौंदर्य के उपकरण स्वदेशप्रियता एवं राष्ट्रीयता की भावना सूचित करते हैं। साथ ही प्रजाजनों के अधिकार । राजा के अत्याचार और अत्याचारी राजा को भगा देना आदि जनक्रान्ति के पूरे उपकरण प्राप्त होते हैं । संक्षेप में भावार्थ यह है कि प्रसाद जी का हृदय पूर्ण भारतीय था और उनमें राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रीय चेतना पूर्ण रूप से ओतप्रोत थे । उनकी राष्ट्रीय चेतना उस युग की ही नहीं अपितु युग-युग की चेतना है ।

" प्रसाद भारत की मिट्टी व उसकी गंध के प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि है । उनकी राष्ट्रीयता सांस्कृतिक ऊंचाइयों में लीन हो गई है । उसमें (प्रसाद साहित्य) में हमारी भूमि की गंध समाई हुई है, जिसके कारण हम उस साहित्य को " अपना " कहते हैं । यह अपना तामसिक मोह व राजसिक उत्साह से मुक्त होकर सत्व की भूमि से ही मुख्यतः सम्बद्ध है, अतः रस-दृष्टि से पूर्ण ग्राह्य है । सत्वोद्रेक शुद्ध रसानुभूति की परम आवश्यकता है ।[2] " राष्ट्रीय धरातल पर " प्रसाद " की उपलब्धि को डा० नगेन्द्र ने बडे मुक्त कंठ से स्वीकार किया है " देशभक्ति का इतना शुद्ध और पवित्र रूप मैंने हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं देखा । (डा० नगेन्द्र, " आधुनिक हिन्दी नाटक ", पृ० ९)

---

१ लहर, पृ० ६७

२ डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, जयशंकर प्रसादः वस्तु और कला, पृ० ४६२

प्रेमदर्शन :

प्रसाद ने मधुर भावों की सृष्टि, प्राकृतिक वर्णनों को गीतों के कलेवर में ढाल कर प्रस्तुत किया जिसमें उनके हृदय की भावनाएं घनीभूत और केन्द्रित होकर गेय हो उठीं । " प्रेम-पथिक " में प्रसाद मानव प्रेम में डूब कर तात्विक निष्कर्षों तक पहुंच जाते हैं । इसमें कवि की अपनी अनुभूति और चिंतन की स्पष्ट छाप है । कवि प्रेम के अत्यंत भव्य और उदात्त स्वरूप को सामने रखता है --

" पथिक ! प्रेम की राह अनोखी भूल भूल कर चलना है,
घनी छांह है जो ऊपर तो नीचे कांटे बिछे हुए "

प्रेम-पथिक, पृ० २२

प्रेम में न कपट की छाया है, न भावनाओं की कलुषता । प्रेम-पथ में स्वार्थ और कामना का हवन आवश्यक होता है । मानवता पर आधारित प्रेम की स्वर्गीय ज्योति, त्याग और बलिदान चाहती है । प्रेम का संबंध आत्मा से है, वह अनंत है और अहं को विगलित करता है । वास्तव में प्रसाद जी की दृष्टि बहुत व्यापक है ।

" वे न भक्त कवियों के समान -सदा ऊपर देखते हैं और न शृंगारिक कवियों की भांति सदा नीचे । उनके प्रेम पथ पर लौकिक तथा अलौकिक प्रेमी सदा साथ चलते हैं । आध्यात्मिक प्रेमी को लोक से विरत होने की आवश्यकता नहीं, उसे केवल अनुभूति-परिवर्तन की आवश्यकता है । " [१]

प्रसाद का लौकिक प्रेम भी अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर अलौकिकता का स्पर्श करने लगता है । ऐन्द्रिय होकर भी अतीन्द्रिय आभा से प्रदीप्त हो उठता है । आत्मिक

१ कामायनी अनुशीलन, डा० रामलाल सिंह, पृ० १७५

प्रेम की कायिक प्रेम पर हमेशा विजय हुई है। यही स्वस्थ प्रेम राष्ट्र कल्याण और विश्व प्रेम की ओर हमें उन्मुख करता है। प्रेमी जब अपना अस्तित्व प्रिय में एकाकार कर देता है तब यह विश्व ही उसे प्रियतम मय दिखाई देने लगता है। प्रेम के इस आध्यात्मिक और स्वर्गीय रूप में विरह की कोई स्थिति ही नहीं रह जाती।

प्रेम का रूप परिमित और व्यक्ति बद्ध न होकर विश्व-व्यापी है, यही प्रभु का स्वरूप है जहां पर सभी को समानता प्राप्त है। मानव प्रेम हमेशा लुटाते रहने के लिए है, प्रतिदान की आकांक्षा व्यर्थ है। पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

" पागल रे वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कन कन से गिन कर
यह विश्व लिये है ऋण उधार "

(लहर, पृ० ३९)

" प्रेम पथिक " में वर्णित प्रेम के तात्विक आदर्शों के पश्चात् " आँसू " में अपनी अनुभूतियों को (घनीभूत वेदना) मानवीय प्रेम के चरम उत्कर्ष के रूप में जिस अनूठे ढंग से व्यक्त किया है वह उनकी प्रगतिशीलता का द्योतक है। उन्होंने वेदना को भी वरदान रूप में ग्रहण किया है। उसे " कल्याणी शीतल ज्वाला " बन कर जीवन उदात्त गतिशील रूप प्रदान किया है।

दार्शनिक पक्ष :

प्रेम दर्शन :

कवि प्रसाद प्रेम और सौंदर्य के कवि माने जाते हैं। लेखक ने प्रेम से संबंधित (संयोगपक्ष, वियोगपक्ष) - चर्चा भावपक्ष वाले अध्याय में की है। इस अध्याय में इस पर विचार किया जायगा कि प्रेम एक भावना विशेष किस प्रकार

गतिशील हो कर अध्यात्म या दर्शन तक पहुंचकर परमानंद को प्राप्त करती है ।

अवस्था विशेष के कारण प्रसाद का युवावस्था में मांसल प्रेम था । प्रच्छन्न रूप से कवि ने " प्रेमिका " का वर्णन यत्र तत्र प्रियतम के रूप में किया है । प्रियतम के सौंदर्य का आकर्षण भी वासनामूलक था उसमें कवि को सुख की भावना थी, आनंद की नहीं । " सुख " शरीर का क्षणिक भाव है और " आनंद " आत्मा का शाश्वत भाव है । मांसल प्रेमाकर्षण में संयोग स्वल्प रहता है और वियोग दीर्घकालीन । कवि ने संयोग की स्मृति में वियोग का मादक वर्णन " आंसू " काव्य में किया है । " आंसू " भावनाप्रधान विरह काव्य में कवि की प्रेमयात्रा मांसल आकर्षण से हट कर क्रमशः विश्वजनीन बन जाती है और यहीं उसका विराम है । कवि अपनी भावनाओं से विश्व नापता है उसे पूरा विश्व दुःखी और दग्ध दिखता है । कवि इस " जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो " की भावना व्यक्त करता है ।[1] कवि को प्राकृतिक सौंदर्य भी रोता, सिसकी भरता और व्यथापूर्ण प्रतीत होता है । कवि वैयक्तिक विरह वेदना को समष्टिगत मानता है और कवि संसार के समस्त दुःखी मानवों के जीवन को सुखी बनाने की कामना व्यक्त करता है अर्थात् कवि का प्रेम मांसल से हट कर विश्वजनीन बन जाता है, भावार्थ यह है कि कवि ने वासना जन्य प्रेम का उत्कर्ष साधकर उसे आत्मीय भाव से ओतप्रोत करता है । कवि यह कहता है कि मेरी भावनाओं में सारे संसार की कल्याण-कामना छिपी हुई है । कवि सारे प्राणियों के प्रति सम्वेदना एवं सहानुभूति प्रकट करता है । भावार्थ यह है कि कवि का " सुख " का अनुभव क्रम क्रम से " आनंद " में परिणत होता है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" रस का निचोड लेकर तुम, सुख से सूखे जीवन में "
बरसो प्रभात हिमकनसा, आंसू इस विश्व सदन में ।[2]

विरह की तीव्रता यद्यपि मांसल और मादक है, तथापि आगे कवि अनुभव करता है

ooooooooooooooooo

१ स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो ।
जीवन-धन । इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो (लहर, पृ० २१)

२ प्रसाद, आंसू, पृ० ७१

कि पूरा विश्व दुःखमय है और वेदना सहन करते करते उसे वह प्रिय लगती है और वेदना का प्रसार पूरे विश्व में हो जाने के लिये कवि नियति से प्रार्थना करता है क्योंकि वेदना के कारण मानव को मधुर भावनाएं प्रिय लगती है अतः पूरा जगत माधुर्य भावनाओं से भर जाय यह कवि की तीव्र इच्छा है। यह उल्लेखनीय है कि कवि की प्रेम भावना प्रारंभ में मांसल है लेकिन बाद में शरीर यात्रा से हट कर आत्मा में पर्यावसित होती है यह प्रेम की दिव्यता है।

प्रारंभ में कवि को " सौंदर्य " आकर्षक और वासनाजन्य प्रतीत होता था।

" कोमल कपोल लाली में सीधी सादी स्मित रेखा
जानेगा वही कुटिलता जिसने भौं में बल देखा।
चंचला स्नान कर आवे चंद्रिका पर्व में जैसी।
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी " [१]

वैयक्तिक विरह का अनुभव करते करते कवि भौतिक से यात्रा करता हुआ आध्यात्मिक तक पहुंचता है जो " कामायनी " के अंत में आनंद प्राप्त करता है। यही विश्व का दिव्य तत्त्व है। कवि की भावनाएं व्यापक सौंदर्य पर टिकती है, जैसे -

" उज्ज्वल वरदान चेतना का सौंदर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनंत अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं " [२]

इससे स्पष्ट है कि कवि की सौंदर्य परक यात्रा रूप-सौंदर्य विधान से अग्रसर होती हुई भाव सौन्दर्य, और कर्म सौन्दर्य पर टिकती है और अंत में कवि इसी सौंदर्यपरक भावना के प्रभाव से " आनंद " प्राप्त करता है।

ठठठठठठठठठठठठठठठठ

१ प्रसाद, आंसू, पृ० २३-२४

२ कामायनी, पृ० ११०

प्रेम के संयोग पक्ष और वियोग पक्ष शृंगार रस के अंतर्गत आते हैं अतः सौंदर्य का संबंध प्रेम से है और प्रेम का संबंध सौंदर्य से। प्रसाद जी ने कामायनी में रूप, भाव एवं कर्म तीनों प्रकार के सौंदर्य का विधान किया है। प्रारंभ में अवस्था विशेष के कारण प्रसाद का प्रेम मांसल, वैयक्तिक, वासनामूलक और सुख प्राप्ति के लिये है लेकिन यही एक आधार है जिसके माध्यम से कवि का प्रेम दर्शन आत्मपरक, समष्टिगत और विश्व मांगल्य परक बन जाता है।

प्रेम की वियोग व्यथा के कारण कवि को वेदना प्रिय लगती है क्योंकि उसी वेदना के माध्यम से कवि संयोग की स्मृतियों को संजोता है और उसका हृदय मधुर भावनाओं से भर जाता है। भावार्थ यह है कि कवि का प्रेम लौकिक धरातल से अलौकिक की तरफ अग्रसर होता है। यथा -

" मुँह सिये झेलती अपनी अभिशाप ताप ज्वालायें,
देखी अतीत के युग से चिर-मौन शैल मालायें। " [1]

" कवि ने अपने " स्व " को विस्तृत करके वैयक्तिक विरह-भावना के दंश को समाप्त कर दिया है और प्रिय प्रसूत वेदना को मांगलिक कार्य करने की प्रेरणा-रूप में ग्रहण कर लिया है, वह लौकिक सुख दुःख से तटस्थ हो गया है और वेदना को करुणा के रूप में स्थापित कर जीवन जगत् का अभिन्न अंग मानने लगा है।" [2]

अध्यात्म-दर्शन :

प्रसाद का काव्य मानवीय वृत्तियों को अपनाता हुआ और उससे पूर्ण रूप से प्रभावित हो कर अलौकिक या आध्यात्मिक की ओर अग्रसर होता है। मानवीय वृत्तियाँ जैसे चिंता, आशा, श्रद्धा, काम वासना, लज्जा आदि का परम

---

1 आँसू, पृ० ७७

2 युग कवि प्रसाद, डा० गणेश खरे, पृ० ११५

मूल्यांकन करके निर्वेद, दर्शन, रहस्य और अंतिम लक्ष्य " आनंद " को प्राप्त करता है। मानव, समाज में रहता है उसके अपने और समाज से संबंधित दुःख सुख रहते हैं। अवस्था विशेष के कारण वह चिंतित होता है, कभी आशा निराशा में झूलता है, जीवन में संघर्ष भी करना पड़ता है और तीव्र वासनाओं की अबाध तृप्ति के बाद उसे आनंद प्राप्त होता है।

प्रसाद जी शिव के परम उपासक थे और दार्शनिक दृष्टिकोण से उनकी आस्था मुख्यतः प्रत्यभिज्ञा दर्शन में थी। कश्मीर प्रदेश में विकसित इस दार्शनिक विचार धारा को प्रत्यभिज्ञा दर्शन या अभेदवाद भी कहा गया है। इसके मुख्य उपकरण आत्मा, जीव, सृष्टि, तीनपदार्थ छत्तीस तत्त्व बतलाये है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में चिति को सर्वोपरि माना है। शिव और शक्ति के सामरस्य के रूप में चिति का ही वर्णन मिलता है। शिव सूत्रों में आत्मा को चैतन्यस्वरूपा माना गया है आत्मा को चिति, परमानंदमय, परमशिव आदि माना है। शैव दर्शन में आत्मा का एक और रूप माना गया है जो शक्ति के नाम से पुकारा जाता है और जो परम शिव से अभिन्न है अर्थात् शिव और शक्ति का सामंजस्य यही आत्मा की मुख्य विशेषता है। " कामायनी " में प्रसाद के दार्शनिक विचारों पर सब से अधिक प्रभाव प्रत्यभिज्ञादर्शन का पड़ा है। प्रसाद जी ने यत्र तत्र कामायनी में आत्मा को चिति, महाचिति, लीलामयी, आनंद करने वाली कहा है -

" कर रही लीलामय आनन्द, महाचिति सजग हुई सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसमें सब होते अनुरक्त "
(श्रद्धा सर्ग, पृ० ५१)

कवि ने उसी महाचिति को इच्छा, ज्ञान, क्रिया रूपिणी भी कहा है -

" इस त्रिकोण के मध्य बिन्दु तुम
शक्ति विपुल क्षमतावाले थे,
एक एक को स्थिर हो देखो, इच्छा, ज्ञान, क्रिया वाले ये "[1]

---

१ प्रसाद, कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २७०

" जीव " की सत्ता को स्वीकार कर अर्थात् मानवीय वृत्तियों में रम कर संसार की ठोकरें खा कर कवि चिति या आत्मा की शक्ति का मूल्यांकन करता है। माया के बंधनों से परिवेष्ठित जीव है और वही जीव माया मोह से स्वेच्छा से रहित बन जाता है तब वही आत्मा या चिति है। मानव जब आत्मा या चिति का प्रभाव पहचानता है तब उसे आनंद प्राप्त होता है। मनु जब जीव के आधीन थे तब चिंता व्यक्त करते थे, आशा, श्रद्धा की भावनाओं से प्रभावित होते थे। युवावस्था के कारण काम और वासना का भी सत्कार कर ईर्ष्या, संघर्ष आदि उथल-पुथल सहन करते है जब मानवीय वृत्तियां पूर्ण रूप से थक जाती है वासनाओं की भी परितृप्ति हो जाती है, संसार की ठोकरें खानी पड़ती है तब चिति को, परम शिव-शक्ति को, आत्मा को याद करता है और पूर्ण रूप से समन्वय साध कर आनंद प्राप्त करता है। यह परम आनंद तत्त्व वही ब्रह्म-दर्शन है इसमें समन्वय और समरसता का प्रभाव रहता है। सब एकता रहती है कहीं भी भिन्नता नहीं रहती। नाम रूप से भिन्नता भले ही हो लेकिन गुण कर्म से एकता ही रहती है, इस अवस्था के अंतर्गत इन उपकरणों का समन्वय रहता है :- (१) नर और नारी का समन्वय (२) बुद्धि और भावना का समन्वय (३) शासक और शासित का समन्वय (४) व्यक्ति और समाज का समन्वय और व्यक्ति के अंतर में ये तीन उपादान होते हैं - इच्छा, ज्ञान और क्रिया - इन तीनों का समन्वय। भावार्थ यह है कि इस प्रकार की समन्वयकारिणी वृत्ति को अपना कर मानव आनंद प्राप्त करता है। और वही ब्रह्मदर्शन है। इस प्रकार की दार्शनिकता प्रसादजी की कामायनी में आदर्श रूप में प्राप्त है।

नियतिवाद :

प्रसादजी को ईश्वर की महान शक्ति में दृढ विश्वास है। उसे वे भूमा भी कहते है और यह विश्व उसका ही मधुमयदान बतलाया है। यथा -

" विषमता की पीडा से व्यस्त हो रहा स्पंदित विश्व महान ;
यही दुख सुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान "[1]

विश्व में फैली हुई विषमता यही भूमा का मधुमय दान है । भावार्थ यह है कि विश्व में विषमता, सुख, दुःख आदि जो व्याप्त है उसमें नियति का प्रभाव है।

" प्रसाद के नियतिवाद में नियति परमात्मा की एक ऐसी नियामिका शक्ति है, जो समस्त विश्व का शासन अथवा नियंत्रण करती है, जिसके हाथ में विश्व का समस्त उत्थान-पतन रहता है और जिसकी स्वतंत्र सत्ता के सामने कोई भी दंभ या अहंकारी व्यक्ति अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकता । यह नियति आत्मा को परिमित बना कर उसे स्वभावानुकूल भिन्न भिन्न कार्यों में नियोजित करती रहती है तथा उसके सभी कार्यों की बागडोर अपने हाथ में रखती है । इस नियति का शासनक्षेत्र परिमित विश्व ही है । "[2]

ब्रह्मदर्शन के दिव्य प्रभाव के अंतर्गत कवि को नियति की परम सत्ता का प्रभाव लक्षित होता है और अपनी वैयक्तिक परिस्थितियां और कठिनाइयों का अनुभव करके कवि का विश्वास उसके प्रति दृढ से दृढतर होता जाता है ।

समन्वय वाद :

ब्रह्मदर्शन में जब अभेदता नहीं रहती तब परमानंद का अनुभव होता है । व्यक्ति के तीन मुख्य उपादान है । इच्छा, ज्ञान और क्रिया ये तीनों जब भिन्न होते हैं तब मनुष्य दुःख भोगता है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की

1 कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ६२
2 डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ४०५-४०६

एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की " [1]

जब श्रद्धा की स्थिति दौड गई और ये तीनों इच्छा, ज्ञान और कर्म एक रेखा में मिल गये अर्थात् भिन्नता नष्ट हो गई तब मनु को आनंद प्राप्त हुआ । यथा -

" स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे "[2]

इसके साथ साथ कवि ने नारी की महत्ता भी बतलाई है मनु अकेले इच्छा, ज्ञान और क्रिया की भिन्नता से दुःखी थे उस दुःख को हटाकर सुख का प्रभाव श्रद्धा ने ही दिया । भावार्थ यह है कि नारी की इतनी महत्ता है कि वह अपने दिव्य प्रभाव से दुःख को सुख में बदल सकती है ।

बुद्धि और भावना का समन्वय :

ब्रह्मानंद का अनुभव करने के लिये बुद्धि और भावना के समन्वय की अनिवार्य आवश्यकता है । उदाहरण के लिये जब मनु ने भावना का त्याग कर के बुद्धि का पल्ला पकडा अर्थात् श्रद्धा को छोड कर के सारस्वत नगर में गये और उनकी कैसी दुर्दशा हुई कि इडा ने भी उनका परित्याग किया और वे घायल हो कर पडे थे तब श्रद्धा ने ही आकर के अपनी नारी भावना की प्रभुता से उसे नया जीवन और नई प्रेरणा दी । भावार्थ यह है कि मानव कोरा बुद्धिवादी बनता है तब संसार की ठोकरें खाता है और पछताता है लेकिन जब बुद्धि और भावना का समन्वय होता है तब उसे आनंद प्राप्त होता है । उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

१ कामायनी, पृ० २८०, रहस्य सर्ग
२ वही, पृ० २८१, वही

" संकुचित असीम अमोघ शक्ति
जीवन को बाधामय पथ पर ले चले भेद से भरी भक्ति
या कभी अपूर्ण अहंता में हो रोग भरी सी महाशक्ति
व्यापकता नियति प्रेरणा बन अपनी सीमा में रहे बंद
सर्वज्ञ ज्ञान का क्षुद्र अंश विद्या बन कर कुछ रचे छंद । "[1]

जब मनु से श्रद्धा मिलती है तब मनु को शान्ति प्राप्त होती है और श्रद्धा ही मनु को " आनंद " के मुख्य, तत्त्व का दर्शन कराती है । यथा -

" सब भेद भाव भुलवा कर दुख सुख को दृश्य बनाता
मानव कह रे । " यह मैं हूं " यह विश्व नीड बन जाता "
श्रद्धा के मधु अधरों की छोटी छोटी रेखाएं
रागारुण किरण कला सी विकसीं बन स्मिति लेखाएं "[2]

इस प्रकार कवि ने ब्रह्मदर्शन का आनंद प्राप्त करने के लिए बुद्धि और भावना का समन्वय बतलाया है । कोरा बुद्धिवादी भी दुःख सहता है और कोरा भावनावादी भी । मानव को आनंद तभी प्राप्त होता है जब बुद्धि और भावना की एकता स्थापित होती है । कवि ने आज के बुद्धिवादी जगत को यह संदेश दिया है कि कोरे बुद्धिवादी बनने से दुःख द्वन्द्व बढ़ते ही जायेंगे इसलिये मानव भावनावादी भी बनें और समन्वय साध कर आनंद प्राप्त करें ।

समाज के दो अभिन्न अंग हैं नर और नारी । अधिकार की मादकता को नर त्याग कर के नारी हृदय की भावनाओं का मूल्यांकन करेगा तभी दोनों में समन्वय होगा और समन्वय की प्रतीति से आनंद का अनुभव होगा । उदाहरण के लिये जब मनु ने श्रद्धा पर अपना अधिकार जमाया तब दुःखी रहे लेकिन जब भावनाओं का मूल्यांकन किया तब उसी श्रद्धा के माध्यम से इच्छा, ज्ञान और क्रिया में सामंजस्य

ooooooooooooooooo

१ कामायनी, इडा सर्ग, पृ० १७१
२ वही, आनंद सर्ग, पृ० २९७-२९८

प्राप्त करके आनंद प्राप्त किया भावार्थ यह है कि ये दोनों अंग अनिवार्य है और एक-दूसरे के पूरक है इसलिये आनंद की प्राप्ति के लिये इन दोनों का समन्वय कवि ने आवश्यक माना है। कवि ने नारी गौरव की अनेक पंक्तियां " कामायनी " में लिखी है, यथा -

" नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में " [1]

" जल पी कर कुछ स्वस्थ हुए से लगे बहुत धीरे कहने,
ले चल इस छाया से बाहर मुझको दे न यहां रहने।
ठहरो कुछ तो बल आने दो लिवा चलूंगी तुरत तुम्हें
तुमने इस सूखे पतझड में भर दी हरियाली कितनी,
मैंने समझा मादकता है तृप्ति बन गयी वह इतनी। " [2]

इस प्रकार कवि ने समाज के दो अभिन्न अंग नर और नारी का समन्वय बतलाया है क्योंकि इस समन्वय में वासना या काम नहीं रहते अपितु बुद्धि और भावना रहते हैं। इस कथन में दो जातियों का समन्वय इसलिये बतलाया है कि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

इसी प्रकार से कवि ने शासक और शासित का समन्वय बतला कर आनंदवाद के अंतर्गत इस समन्वय की परम आवश्यकता बतलाई है। उदाहरण के लिये जब मनु सारस्वत नगर में उचित रूप में प्रजापति थे अर्थात् प्रजा को पुत्रवत् पालते थे उस समय वहां सुख और आनंद दोनों ही थे लेकिन अधिकार की मादकता से जब यह प्रेम का संबंध टूट गया तब घोर विनाश हुआ भावार्थ यह है कि शासक और शासित के समन्वय की भावना आनंद प्राप्त करने के लिये अनिवार्य है।

---

१ कामायनी, पृ० ११४, लज्जा सर्ग
२ वही, निर्वेद सर्ग, पृ० २२७-२३१

समरसता :

जयशंकर प्रसाद के उपर्रिनिर्दिष्ट प्रत्यभिज्ञा दर्शन में समरसता का विशिष्ट स्थान है । जब आत्मा, परमात्मा भाव को प्राप्त होकर पूर्णतः एक शिवरूप हो जाती है, उसे सामरस्य कहते हैं । प्रसादजी भी प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर समरसता के सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए प्रत्येक प्राणी को समरसता का अधिकारी घोषित करते हैं ।

" नित्य समरसता का अधिकार,
उमडता कारण जलधि समान ;
व्यथा में नीली लहरों बीच
बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान । " [1]

यह समरसता की स्थिति तो अभेदत्व अथवा शिवत्व की स्थिति है । समरसता की स्थिति में पहुंचने से पूर्व मानव विषमता की स्थिति में रहता है । जीव, माया से परिवेष्टित होने के कारण विषमता में पडता है जिसमें भेद की प्रधानता रहती है । कवि का यह विश्वास है कि यह विषमता नियति का, भूमा का प्रदेय है क्योंकि वह चिति अपनी माया शक्ति से विश्व का सृजन करती है और विश्व में सुख दुःख का प्रभाव लक्षित होता है । यथा -

" विषमता की पीडा से व्यस्त हो रहा स्पन्दित विश्व महान ;
यही दुख सुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान " [2]

" विषमता लघुत्व या संकुचित अवस्था की सूचक है और इसके विपरीत समरसता महत्व या स्वतन्त्रावस्था की सूचक है । यह लघुत्व या संकुचित अवस्था जीवात्मा की स्थिति

1 कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ६२
2 वही

की ओर संकेत करती है और महत्व या भूमा तथा स्वतंत्रावस्था परमात्मभाव या शिवत्व की सूचक है। विषमता की संकुचित अवस्था में सुख और दुःख दोनों रहते हैं; जब कि समरसता की स्वतंत्रावस्था में केवल सुख ही सुख अथवा आनंद ही आनंद रहता है। अल्प में या लघुत्व में सुख नहीं है, निश्चय ही जो भूमा है वही सुख है। " कामायनी " में भी इसी कारण इस सुख-दुःखात्मक जगत को भूमा का मधुमय दान कह कर इस बात की ओर संकेत किया गया है कि विषमता से ही समरसता की ओर जाने का मार्ग गया है, भूमा की प्राप्ति भी इसी विषमता से आगे बढ़ने पर हो सकती है और तभी अखंड आनंद भी प्राप्त हो सकता है। "[1]

विषमता को दूर करने के उपाय " समन्वयवाद " में बतलाये हैं इसलिये यहां दोहराये नहीं हैं।

श्रद्धा, इस संसार में समरसता प्राप्त करने को व्यक्ति का नित्य अधिकार मानती है और संसार की विषमता का कारण उसे प्राप्त न कर सकना ही कहती है - यथा -

" नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता कारण जलधि समान।
व्यथा से नीली लहरों बीच बिखरते सुख-मणि गण द्युतिमान। "

(कामायनी, पृ० ६२, श्रद्धासर्ग)

आनंदवाद :

कामायनी प्रसादजी की अंतिम काव्यकृति है और उसका अंतिम सर्ग " आनंद " है। आनंद से परे कोई वस्तु नहीं है। आनंद ही आत्मा के अनुभव की शाश्वत भावना है।

१ डा० द्वारकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ४१२

" आनंद, सुख और दुःख के बीच रहनेवाली चित्त की एक स्थायी अवस्था का नाम है । आनंदवाद एक व्यापक दार्शनिक सिद्धान्त या दृष्टि है । इस दार्शनिक सिद्धांत को " प्रसाद " ने अपनी विशेष प्रवृत्तियों और संस्कारों से ग्रहण किया अतः उसे हम प्रसाद का " आनंद वाद " कहते हैं । आनंद मानव जीवन की सब से बहुमूल्य वस्तु है । " प्रसाद " ने अपने आनंदवाद की स्थापना में उपनिषद को साक्ष्य बनाया है । आत्मा आनंदमय परमात्मा है । ऐसे आनंद के प्रति प्रसाद श्रद्धावान है । वे जीवन, व्यवहार, साहित्य, कला, संस्कृति सभी क्षेत्रों में आनंद के समावेश के आग्रही है । जीवन में आनंद एक निश्चित मूल्य है और उस आनंद को प्राप्त करने के लिए प्रकृति का सान्निध्य, उच्च दार्शनिक दृष्टि में विश्वास, सामरस्यमयी जीवन साधना तथा सर्वत्र शिवभाव का अनुभव - आदि बातें अत्यंत आवश्यक है "[1]

प्रसाद की मान्यता है कि आनंद की धारा इतनी प्रखर, वेगवती, प्रभावित, और प्रवाहित रहती है कि विश्व की कोई भी शक्ति, कोई भी आकर्षण उसे रोक नहीं सकते । मानव के अंतर में " आनंद " की भावोर्मि प्रविष्ट होने पर वह निर्मम, पुण्यश्लोक, खूब आशावादी, दिव्य और महान बन जाता है ।

सारांश यह है कि प्रसाद जी की दार्शनिक पीठिका कोरे तत्त्वज्ञान की वस्तु न होकर पूर्ण व्यवहारिक और मानवीय है । इस ब्रह्मदर्शन के प्रभाव से मानव आनंद तत्त्व प्राप्त करता है और यह प्राप्त करने पर उसे और किसी चीज की आशा, तृष्णा नहीं रहती । प्रसाद जी की ~~सर्वोच्च~~ दार्शनिकता के बारे में डा० रामेश्वरलाल खंडेलवालजी लिखते हैं कि -

" प्रसाद की मूल दार्शनिक दृष्टि की प्रमुख चेतना यह है कि जीवन का आदर्श

ooooooooooooooooo

१ डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, जयशंकर प्रसाद, वस्तु और कला, पृ० १२०-१२१

और व्यवहार की दृष्टि से एक हो जाय, परम तत्त्व केवल चिंतन का ही विषय न रहे, वह पूर्ण व्यवहार्य भी हो जाय। " प्रसाद " ने अपनी इसी मूल दृष्टि को जीवन-धरातल पर चरितार्थ करने के लिए एक ऐसी पुष्टि व प्रामाणिक दर्शन-प्रणाली को मुख्य आधार बनाया है जो उनके गूढ मंतव्य के निकटतम हो : वह है प्रत्यभिज्ञादर्शन। अक्षय आनंद को प्राप्त करने की जो समरसतामयी जीवन पद्धति है उसका विशदीकरण " कामायनी " की नायिका श्रद्धा के मुख से ही कराया है। "

(जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला, पृ० ११६)

प्रसाद जी ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन के दार्शनिक विचारों को शुष्क दार्शनिक की श्रेणी में न रख कर उसे व्यावहारिक और मानवीय बनाये हैं। वह योगियों की और संतों की ही वस्तु न होकर साधारण समरसतावादी मानव की ग्राह्य वस्तु बन गई है वे दार्शनिक विचार दर्शन और काव्य दोनों का समन्वित रूप बन गया है, इसे अपना कर मानव इसी जीवन और जगत में परम आनंद की प्राप्ति कर सकता है।

न्हानालाल – सामाजिक चेतना

कवि न्हानालाल सच्चे अर्थ में वैष्णव थे। दूसरों के दुःखों के प्रति संवेदनशील होकर उनके दुःखों को दूर करने का तन, मन और धन से सहायता करते थे। वे एकता, समता, विश्वबंधुत्व की भावना में सतत प्रयत्नशील रहे। उनके काव्यों में सामाजिक चेतना के तत्त्व यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। जैसा कि प्रसाद जी के सन्दर्भ में सामाजिकता के लिए मानवतावादी दृष्टिकोण को हम लक्ष्य कर चुके हैं, इसकी व्यंजना कवि न्हानालाल के काव्य में भी हुई है –

" कंइ वधारे विशाळ उदार, कंइ सविशेष समभाव शीळो,
सुहृदना उर आर्जव सरिखो, हितस्वी, सात्त्विक, साधुता शो,
कंई ओरतोनो गायत्री मन्त्र आप्यो छे ? "[1]

---

1 राज सूत्रोनी काव्य त्रिपुटि, पृ० २४

इन पंक्तियों में कवि ने ईसा मसीह की तरह मानवसेवा करने का निर्देश किया है। यह भावना व्यक्ति को लोक कल्याण की दिशा में प्रेरित करती है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित उक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" इत्याथी नहीं, हो क्हावरी।
हेतथी हेत केळवाशे
पृथ्वी पगधारे पाथरीश
प्रेरणा, पुण्य ने प्रकाश "[1]

" कंई कंईना कल्याण कीधां छे,
प्राण धन खरची प्राण उद्धार्यां छे,
ते कल्याण ज पाम्या छो "[2]

मानव सेवा भाव से संबंधित इसी प्रकार की अनेक पंक्तियां उनके काव्यों और नाटकों में लक्षित होती है। कवि का " गुजरातनो तपस्वी " काव्य गांधीजी के संबंध में लिखा गया है। यह सम्पूर्णतया मानवतावादी और भावपरक दृष्टिकोण का काव्य है। कतिपय महत्त्वपूर्ण पंक्तियां इस प्रकार हैं :-

" निरन्तर दुःख ने न्होतरतो,
एशियाना एक महायोगीन्द्र ईशुनो
ए अनुज छे न्हानकडो;
परपीडा प्रीछी प्रजळनार
महावैष्णव नो ए वंशज छे
दुःख तपती आ दुनियानो दरवेश छे ते
दुःखियानो बेली ने विसामो,

---

1 केटलाक काव्यो, भाग-२, पृ० १९, ५२
2 चित्रदर्शनो, गुरुदेव, पृ० ७९

दामुनयांना अंतरनो आराम
घायलना आत्मानो अमृतौषधि :
अनारोग्योनो धन्वन्तरी छे ते
अखूट क्षमाजल त्हैने कमंडले छे,
सहनशीलतानी त्हैनी त्वचा छे "[1]

" कुरुक्षेत्र " महाकाव्य भी सामाजिक चेतना से भरा हुआ है । इसका शरशय्या काण्ड राजनीति और सामाजिक चेतना का अपूर्व खजाना है । सामाजिक चेतना परत्व कुछ पंक्तियां यहां उल्लेखनीय हैं -

" संसारना समरांगणमां जा
निज निजना न्हाना के म्होटा
सहु को कुरुक्षेत्र खेले छे त्यहां
संसारमां जा ने नीलकंठ था
हसतां हसतां झेर पीजे " [2]

" ओज अने अगर " विरह काव्य है फिर भी इसमें सामाजिक चेतना के स्फुलिंग लक्षित होते हैं । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" राजा प्रजामां परस्पर स्नेह वावशे
ए थशे जगतनो तारणहार,
मानववंशनो भाग्य विधाता
आज सत्कुळ एक स्थापशो
तो काल सत्प्रजा एक पांगरशे " [3]

---

१ न्हानालाल - चित्रदर्शनो, गुजरातनो तपस्वी, पृ० १४१
२ वही, शरशय्या, पृ० ४६
३ न्हानालाल, ओज अने अगर, पृ० ७४

सारांश यह है कि कवि की कोई भी काव्यकृति ले उसमें सामाजिक चेतना के तत्त्व मिलते हैं क्योंकि कवि पूर्ण रूप से वैष्णव और सच्चे अर्थ में मानवतावादी थे। " हरिसंहिता " विराट काव्य में भी सामाजिक चेतना से संबंधित पंक्तियां हैं। इसी में लिखे हुए १५ उपनिषद तो पूरे मानवतावादी और चेतना एवं जागृति को संजोये हुए हैं। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" मिठ्ठां जळो सागरमांथी सारवी,
दिगन्त घूमती भरी वादळीओ,
पछी हैयां शतधार वर्षा वर्षीने,
मिठ्ठी मधुरी वसुन्धरा करो।

ज्ञान संपन्न साधनो-सिद्धि साधी,
पांखो प्रसारी भावनानी ऊर्ध्वगामी;,
महालक्ष्य नो रैवत मध्य मांडी,
मन्थो भाग्यवन्ता। संसार-सागर।

थजो नरो अमृत सागरो समा।
थजो नारीओ सागरमांनी लहरो।
सागर-विशाळां थजो दृष्टि-हैयां।
ब्रह्म मरेला सागरिया थजो सहू " [१]

सामाजिक चेतना के पूर्व विवेचित मुख्य उपकरण आशावादिता और पुरुषार्थपरता कवि के काव्यों में लक्षित होते हैं। यहां संक्षेप में उनके उदाहरण दिये जा रहे हैं -

आशावादिता :

" निराशा नीतरती आशाथी
केटलांक अन्तर्आत्माने सान्त्वन छांटे छे " [२]

---

१ न्हानालाल, हरिसंहिताना उपनिषदो, पृ० ३०-३१-३२

२ न्हानालाल, ओज अने अगर, पृ० २५

" स्वप्नाळोना कुन्कहार ।
स्वप्नाने साचां पाड
विश्वप्रेरणा समा सौन्दर्यने तुं शोध छे
जो, ने व्हारी नयन प्यालीओ भरी लै
वांच, विचार, ने विमास " [1]

कवि स्वतः आशा और प्रेरणा के जीवंत स्रोत थे इसलिये उनके काव्यों में आशावादिता लक्षित होती है । पूरा " कुरुक्षेत्र " महाकाव्य आशावादिता का जीवंत काव्य है । युद्ध भूमि में निराश अर्जुन को कृष्ण की प्रेरणा आशावादिता का ज्वलंत उदाहरण है –

" ओ क्षात्र संजीवन मणि । गांडीव शाने छांड्युं ?
ब्राह्मण यज्ञ छांडे, तो क्षत्रिय शस्त्र छांडे :
सूर्य देव प्रताप त्यागे, तो क्षत्रिय वीरत्व उतारे,
जीवननी धन्य घडी उगी छे, कर्तव्यनो परम अवसर आव्यो छे :
रणमां रणवीर था काळने पी जा, विराटने ये मापी लै
सूर्यचन्द्रनी गैंदो उछाळतो आयुष्य पथे संचरतो जा
निष्काम था, इन्द्रियोने स्थैल ;
आकांक्षाने आरजू ने लगाममां लाव
भव्य वर्णी, उदार भाव, विश्वाधार
निष्काम कर्म योग आचर
उठ, गांडीव लै, हाक्ल पाड
ने आभने ये थरथरावतो
जीत जीवनना जंगने " [2]

" संसारनुं कुरुक्षेत्र जोगी न्हाळे तहे ऊभी ;
संसारी शूरनी पेरे नित्ये संग्राम खेडतो ।

1 न्हानालाल, ओज अने अगर, पृ० 120
2 न्हानालाल, कुरुक्षेत्र, योधपर्वणी, पृ० 34–35

प्रेम वाव्ये प्रेम ऊगे, पुण्य वाव्ये ऊगे प्रभु ;
ब्रह्म वाव्ये ब्रह्म ऊगे, वावो पुण्य, लणो प्रभु । "

सामाजिक चेतना का दूसरा मुख्य तत्त्व पुरुषार्थपरता भी न्हानालाल के काव्यों में और काव्यों से अधिक नाटकों में खास करके इन्दु त्रयी में द्रष्टव्य है । विषय संवर्धन के लिये इनमें नाटकों का समावेश नहीं किया है लेकिन स्वतः कवि ने कहा है कि " हुं घणी वार पाडी पाडी ने कहुं छुं के मारा नाटको काव्यो छे " ।[1]

पुरुषार्थपरता के उदाहरण " कुरुक्षेत्र " महाकाव्य में मिलते हैं । भावार्थ यह है कि कवि के भावजगत में सामाजिक चेतना का पूरा प्रभाव था और इस चेतना से प्रभावित होकर कवि ने अपने जीवन में अनेकों मानवसेवा के कार्य किये । पुरुषार्थ परता के उदाहरण -

(अ) " कौरव महा सेनामां पार्थकुमार पेठो,
भागतो, पाडतो, रंजाडतो, उच्छेदतो,
रमण भमण करतो तो कुरु रणमां
गरुड पांखे घूमतो ए कुमार " [2]

(ब) " प्रारब्ध ने जीतो पुरुषार्थथी
एक छे अजेय ध्वज कुरुमंडळमां ;
ए अजेयने अमृत पाय " [3]

(क) " अशक्य ने शक्यतानी सीममां आणो
ए पुरुषनुं पुरुषातन " [4]

ooooooooooooooooo

1 अर्ध शताब्दिना अनुभव बोल
2 कुरुक्षेत्र, चक्र व्यूह, पृ० ४२
3 कुरुक्षेत्र, आयुष्यनां दान, पृ० १२

समाज व्यक्तियों का समूह है और व्यक्ति के मुख्य दो प्रकार हैं - नर और नारी ये समाज के अभिन्न अंग है । सामाजिक चेतना के अंतर्गत नारी का प्रभाव भी एक आवश्यक अंग है । कवि का पूरा जीवन " बाई " पर आधारित था और कवि ने अपने भाषणों में यत्र तत्र यही कहा है कि यह " कवि कर्म मैंने नहीं किया " बाई " ने किया है " भावार्थ यह है कि कवि के काव्यों की सामाजिक चेतना उनकी कुलयोगिनी भाणवा से संबंधित थी । इस प्रकार कवि ने यत्र तत्र नारी जीवन का आदर्श जो सामाजिक चेतना का मुख्य अंग है, बतलाया है । कवि की नारी जीवन की भावनाएं निम्नलिखित काव्यों में परिस्फुटित हैं :-

कुलयोगिनी, प्राणेश्वरी, सौभाग्यवती, लग्नतिथि, पुनर्लग्न, मणिमय सेंथी, आदि ।

काका कालेलकर ने तो कवि को " नारी गौरवनो कवि " ही कहा है । कवि ने अपने काव्यों में नारी प्रेरणा का यथोचित मूल्यांकन किया है । जिस पर तृतीय व चतुर्थ अध्यायों में विचार किया जा चुका है । कवि ने संसार मंथन पुस्तक में लिखा है कि " नर नारीनां जोडलां तेमनां दिलनी दोरी एक " - (प्रथम पृष्ठ, प्रथम वाक्य)

इस प्रकार कवि ने नारी भावना की महत्ता बतला कर " मेरा " यह भावना मिटा कर " हमारा " (हम दोनों का) यह बतलाया है । यह एकता सामाजिक चेतना का मूल मंत्र है । कवि ने यह भी कहा है कि " यह संसार एक पंछी है और पुरुष और स्त्री उसकी दो पाखें हैं , इन पांखों से संसार रूपी पंछी उडता है "

" पांख कापी पंखी ने कहो उड
तो ए केटलुं उडशे " [1]

---

1 इन्दुकुमार, अंक-1, पृ० 71

इस भावना से संबंधित कवि ने एक पूरा काव्य ग्रन्थ लिखा है " दाम्पत्य स्तोत्रो " । इसमें दोनों की पूर्ण रूपेण एकता से ही सामाजिक उत्कर्ष संभवित है यह बतलाया है । जिसे पूर्व कई विवेचन में हम लक्ष्य कर चुके हैं ।

दाम्पत्य स्तोत्रो :

" पियुजी म्हारा भवसागरनुं नाव जो ।
ए नावे हुं अजब कुमारी अलबेलडी "

(दा० स्तो०, पृ० ७, मुखपृष्ठ)

" रविनी रविकान्ति जेवी, ने ज्यम छे चन्द्रनी चारु चन्द्रिका :
वनकान्ति वसन्तः एहवी नर केरी नरकान्ति नार छे "

(पृ० ११)

" करमायल ने वसन्त, ने
ज्यम रोगी जनने ज औषधि :
जगते ज्यम मर्त्य ने सुधा :
पतिनी संजीवनी सुपत्नी छे "

(पृ० १२)

" पति पत्नि का द्वैत फिर भी दंपति का अद्वैत, द्वैत मिटता नहीं है फिर भी अद्वैत की रचना होती है । अद्वैत दशा में भी व्यक्ति द्वैत अखंड रहता है । द्वैत भी सत्य है और अद्वैत भी सत्य है । यही दाम्पत्य भाव का परम रहस्य है "[1]

इन पंक्तियों के माध्यम से यह प्रतीत होता है कि कवि के काव्यों में सामाजिक

१ दाम्पत्य स्तोत्रो, न्हा० कवि, पृ० १६ की पंक्तियां अनूदित

चेतना पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है । कवि की कृतियों में उसके जीवन की अभिव्यक्ति होती है कवि ने अपने सामाजिक चेतना से पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति पूर्ण रूपेण अपने काव्यों, नाटकों और भाषणों में की है । कवि का भाषण शीर्षक " अस्मदीयम "[1] नारी भावना का आदर्श बतला कर सामाजिक चेतना के प्रति अग्रसर करता है । सारांश यह है कि कवि का पूरा काव्य साहित्य सामाजिक चेतना के आदर्शों से भरा पड़ा है । सामाजिक चेतना का अभिन्न अंग है । व्यक्तियों का सदाचारी जीवन जिससे सदाचारी समाज बनेगा और संस्कारी और सदाचारी समाज ही राष्ट्र का मूलाधार है -

" यौवननो उघाड छतां विकारहीन,
बुद्धिवैभव छतां अडग श्रद्धावान,
प्रारब्धवादी छतां निरन्तर पुरुषार्थी,
अद्वितीय गुरु छतां सदाना शिष्य,
महतत्त्वज्ञानी छतां ये एकान्तिक भक्त हमें हता " [2]

" श्रद्धा न धोता, अन्ध श्रद्धा ज धोजो
वस्त्र न धोता, मेल ने डाघ धोजो
पाप धोजो, प्रकृति धोजो, भाग्य धोजो,
न धोशो सूर्य तेज के चन्द्र ज्योत्स्ना " [3]

" बाधानी सुन्दरताए सुन्दर थवुं छे
आत्म सुन्दरता विनानां तो
सौन्दर्यना ये छे अप्सरा भाव
भाव, वेण ने कर्म —

---

१ न्हानालाल, उद्बोधन, ८ जनवरी, १९२७ शनिवार बंबई आर्य समाज हाल में स्त्री समाज के समक्ष भाषण

२ चित्रदर्शनो, गुरुदेव, पृ० ८०

३ शिवशंकर शुक्ल, हरिसंहितानां उपनिषदो, पृ० २९

ए सितारना संगीतो न्हौतरशे
त्यहारे दुनियामां देवो अवतरशे "
हैयामां हलादल एक ;
मुखडे मधुदान बीजां ;
ने कर्म कार्पण्यता त्रीजी
असुर त्रयीनी एवी
मनुवंशे उपासना आदरी छे आज
असुर पूजी देवलोक पाम्युं छे को ?
पापना अंगलेप करी
पुण्य लोकमां कोण कोण गयुं ? " [1]

कवि स्वतः सदाचारी थे और शील, आचरण में उनकी दृढ मान्यता थी । कवि ने " प्रेम " को वासना जन्य न मानकर परब्रह्म माना है । " परम प्रेम परब्रह्म " - जया जयंत कहा है । [2]

सारांश यह कि कवि ने सामाजिक चेतना के अंतर्गत कवि ने, मानवता, एकता, समन्वय, विश्वबंधुत्व, संस्कार सदाचार आदि का पूर्ण रूपेण मूल्यांकन कर के अपने काव्यों और नाटकों में तत्संबंधी भावनाएं उद्घाटित की है ।

राष्ट्रीय चेतना :

कवि न्हानालाल का समय १८७७ से १९४६ याने ब्रिटीश राज्य का प्रभाव और दासता का समय था । उस समय में भी कवि ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित गीत और काव्य लिखे जो उनके काव्यों में और नाटकों में संकलित है । कवि की राष्ट्रीय भावना मानवतावादी और समाजवादी थी । कवि, प्रजापालक, प्रजा

१ ओज अने अगर, पृ० ७१-७२

२ इन्दुकुमार अंक-१, पृ० २

रक्षक राजा का सन्मान करता है और प्रजा पीडक का घोर तिरस्कार -

" रघुवीर सरिखडा प्रजापरायण,
युधिष्ठिर सरिखडा धर्मनिष्ठ,
जनक विदेही सरिखडा जीवन मुक्त
मनु समा संसार शास्त्री,
सिद्धार्थ जेवा त्यागमूर्ति, अशोक जेवा अहिंसक
लिनु स्मिठस् शा निर्मानी, लियानिडास शा स्वार्पणी,
पेरिकिलिम्स वस्तुपाळ, तेजपाळ, शाहजहान समा
देशशणगार हारा
प्रताप समा अटंका, शिवाजी समा स्वधर्म ढाळ
वाशिंग्टन समा आत्मसंयमी,
अनु अकबरशाह सरिखडा सर्वसमन्वयी,
श्रीकृष्ण जेवा सत्यसहायक गीता उद्गाता क्रान्तदर्शी
जगतनी परम राजप्रेरणाओ समोवड
राजमन्त्र द्रष्टा राजर्षि " [1]

इन पंक्तियों में रेखांकित शब्दों से युक्त गुणवाले राजाओं का कवि पूर्ण रूप से आदर करते हैं। कवि ने भारत से ही उदाहरण नहीं दिये है अपितु विश्व इतिहास से नाम चुने है भावार्थ यह है कि कवि की यह दृष्टि संकुचित नहीं लेकिन दिव्य और विशाल है।

राष्ट्रीय चेतना के मुख्य उपकरण है वीरता, शौर्य, आशावादिता, पुरुषार्थपरता आदि। ये सब तत्त्व कवि के काव्यों में और नाटकों के गीतों में उपलब्ध है। कवि को भारतवर्ष के प्रति बहुत महत्ता और दिव्य मान है। कवि भारत

1 न्हानालाल, राजसूत्रोनी काव्य त्रिपुटि, पृ० ६

को जगत की माता, धात्री मानते है और आर्य लोगों को भारत की सब से प्राचीन प्रजा मानते हैं :-

भारत की महिमा (राष्ट्रीयता का परम मूल्यांकन)
भारत वर्ष : आर्यकुळनी सनातन पाठनगरी
रन्तिदेवे कीधो ऐने दानखंड (त्याग की भावना)
दुष्यन्त राजे कीधो ऐने प्रेमखंड (प्रेम की भावना)
भरतदेवे कीधो एने भरतखंड (समन्वय की भावना)
व्यास नारायणे कीधो काव्यखण्ड (ज्ञान की भावना)
पतंजलिए कीधो योगखंड (योगकी भावना)
महाभाग महर्षिओए कीधो अध्यात्म खंड (दार्शनिक भावना)
क्षत्रिय वीरोए कीधो पराक्रम खंड (वीरता की भावना)

पृथ्वी पमरती'ती परिमळोथी [1]

ये पंक्तियां भारत के उज्ज्वल अतीत के प्रति गौरव भावना का साक्ष्य उपस्थित करती हैं जो कि इस युग की राष्ट्रीय चेतना का महत्त्वपूर्ण आधार रहा है ।

विश्व यह मानता है कि ग्रीस, और इजिप्त की संस्कृति सब से पुरानी है लेकिन कवि ने इसका मुंहतोड जवाब " इन्दुकुमार " में दिया है और भारत की सर्वोपरिता प्रतिपादित की है ।

कवि ने राष्ट्रीय चेतना के अंतर्गत समन्वय की भावना अपनाई है और संस्कृति के समन्वय के प्रति निर्देश किया है । संस्कृति का समन्वय राष्ट्र का प्राण है कवि की उदार काव्य दृष्टि संस्कृति के समन्वय के प्रति दौडी है और वह पश्चिम का

००००००००००००००००

१ कुरुक्षेत्र, समन्त पंचक, उपोद्घात, पृ० १९

यही पूर्व का और भारत का आदर्श था । इसी आदर्श के लिये पश्चिम के राष्ट्र आज बीसवीं शताब्दि में भी पूर्ण रूप से प्रयत्नशील है । यह संस्कृति के समन्वय की भावना भारत की बहुत प्राचीन भावना थी । पंक्तियां द्रष्टव्य है :-

" मांडो संस्कृतिओनी तुला पूर्व ने पश्चिमना पल्लांओमां
जगसरखामणीए भारत नहीं भेंखवाय
यूरोपने आंबले वसन्त बेठी,
ने लक्ष्मीजीना म्होर म्होर्यां,
भारतनो जलमार्ग जड्या पछी? के पहेलां ?
पूर्व एटले जगतनी उदय दिशा
पश्चिम एटले जगतनो अस्ताचल
ए व्याख्याओ भूंसी कोनाथी भूंसाशे ?

जगत् संस्कृतिओना महासमन्वय उपर
स्थपाशे भावी जगतनां मानवमन्दिरो
मनुवंश मेळे मळी उजवशे
संस्कृतिओना समन्वयनो समैयो
भारत आचार्य थशे जगत् समन्वय ना ए महायज्ञनो "[1]

कवि की राष्ट्रीय चेतना परक अनेकों उपकरण " कुरुक्षेत्र " महाकाव्य में उपलब्ध है । इसमें यह बतलाया है कि जो हमारा अधिकार है उसे प्राप्त करना परम कर्तव्य है फिर भले ही हमें हिंसा करनी पड़े । मानव, अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए तन मन से प्रयास करे यह राष्ट्रीय चेतना है यही चेतना " कुरुक्षेत्र " में कृष्ण के माध्यम से बतलाई है । " कुरुक्षेत्र " के कृष्ण राजनीतिज्ञ थे, माधुर्यभाव वाले बंसी बजानेवाले नहीं अपितु सुदर्शन चक्रधारी लोक-कल्याणक और दुष्टों के

1 न्हानालाल, इन्दुकुमार, अंक-२, पृ० ६४-६६-६८

संहारक के रूप में हैं। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" धर्मराज ! प्रारब्धनी सीमाओ
पराक्रमी ने काजे नथी
महाकाळने जीते ते महारथी
युगव्हेणमां खेंचाय नहि ते तारो
युगने घडे ते युगाधीश " [1]

धर्म, वीरनी अंगुलिओमां रमे छे - पृ० ४० (शरशय्या)

" पांडवोनो प्रारब्ध पाठव्यो विजय नथी,
पुरुषार्थ पाम्यो विजय छे :
दैवदीधो नथी, वीर जीत्यो छे।
विजय वरे छे वीरना धनुष्य ने
पांडवो ! त्हमे प्रारब्धने जीत्या छो " [2]

" त्हमारुं त्हमे खड्गथी कापीने ल्यो,
बाणथी परोवी ने ल्यो
क्म छे वनराजनां, जगत छे जयवन्तानुं
भीखी ने नहि, वैश्य विष्टीथी नहि ;
जीतो ने जगतने भोगवो " [3]

युधिष्ठिर के अंतर में जो विजय की ग्लानी थी वह भीष्म ने दूर की और बतलाया कि अधिकार प्राप्त करने के लिये हिंसा, रक्तपात, युद्ध आदि धर्म है। कायरता

---

१ कुरुक्षेत्र, शरशय्या, पृ० १८

२ वही, पृ० २८

३ कुरुक्षेत्र, हस्तिनापुरना निर्घोष, पृ० २७

यह पाप है। राष्ट्रीय चेतना के अंतर्गत राजनीतिज्ञ का जीवन पूर्ण त्यागमय और मानवतावादी होना चाहिए। " परोपकाराय पुण्याय " ही उसकी भावना होनी चाहिए। उसका जीवन विलास और वैभव का जीवन नहीं होता। राष्ट्रीय चेतना के अंतर्गत राजनीतिज्ञ का जीवन कैसा होना चाहिए कवि ने यह भी बतलाया है। पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :-

" राजप्रवृत्तिनी चाखडीए व्हडनार ने
नथी विलास स्वार्थ माटेनी नवराश,
के विरक्ति माटेनी अश्रद्धा वा अवगणना
धर्म धेनुना गोपराज ने तो
प्रभु आदेशनी भव्य वेणु
जगत कुंज भरी ठहुकारवी :
आशा उत्साहना महागीत
अमृत किरण शी अंगुलिए
सौ प्राणतन्त्रीमां छेडवां :
रक्षा, चारण, दोहन, मन्थन :
अनेक श्रमविधि साधी साधी
जीवन पोषवां ने प्रफुल्लवां
ए राजयोग ज घटे छे " [1]

निष्कर्ष यह है कि कवि ने अपने काव्यों में (डोलन शैली) नाटकोंमें राष्ट्रीय चेतना की भावनाएं पूर्ण रूप से उभारी है और भारत का यशोगान करके प्रमाण सहित भरत की उच्चता और दिव्यता प्रतिपादित की है। " चित्रदर्शनो " काव्य पुस्तक में " गुजरातनो तपस्वी " यह पूरा काव्य राष्ट्रीय भावना का ज्वलंत उदाहरण है। इसी काव्य में राष्ट्रीयता के मूल तत्त्व - परोपकार, त्याग, मानवसेवा आदि --

१ न्हानालाल, इन्दुकुमार, अंक-१, पृ० ४२

सन्निहित है ।

दार्शनिक पक्ष :

प्रेम दर्शन :

प्रेम एक ऐसा भावनात्मक संबंध है जिसके सहारे मनुष्य अपना जीवन जीता है, झेलता है, संघर्ष करता है और अंत में उसका निधन हो जाता है । वासना-युक्त, मांसल संबंध होने के कारण विलास वैभव युक्त जीवन और नवसृजन होता है यह लौकिक प्रेम है । विजातीय के साथ वासना जन्य आकर्षण होने के कारण काम और रति के प्रभाव से पुरुष और स्त्री उद्दाम बनते हैं और मिलन में परिणति होने से मांसल वासना की क्षणिक शांति होती है । सृष्टि विकास का यह सूत्र है । न्हानालाल ने इसे जीवन में आवश्यक मान कर और अवस्था विशेष का धर्म बतलाकर संसार का मुख्य आधार स्तंभ गृहस्थाश्रम माना है और दाम्पत्य भाव उसकी मुख्य प्रेरणा है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" आर्य संसारनो पायो छे पृथ्वी अविचल गृहस्थाश्रम " [१]

" दाम्पत्य भावो जनना छाया ए देव भावनी
पूरी वसन्तनी राणी सौना सौ सद्मनोरथो "

इस प्रकार गृहस्थाश्रम का प्रारंभ वासनाजन्य काम और रति की प्रेरणा से होता है जिसका परिणाम सृष्टि सृजन है । कवि ने इसी अर्थ में इसे अपनाया है कामुक बन कर या व्यभिचारी बन कर नहीं अपितु पत्नी परायण और उच्च भावनाशील बन कर " प्रेम " का स्वीकार किया है । भावपक्ष के अंतर्गत इसका पूरा विवरण दिया गया है पुनर्वृत्ति दोष के कारण यहां संकेत मात्र ही किया है ।

---

१ न्हानालाल, कुरुक्षेत्र, शरशय्या, पृ० २०

कवि की यह लौकिक प्रेम यात्रा, जिसमें त्याग और समर्पण के तत्त्व निहित है, गतिशील हो कर गृहस्थाश्रम में पूर्ण फलदायी बन अलौकिक के प्रति अग्रसर है। कवि अपने आपको " म्होरेला दलपतराम " कहते थे। कवि की प्रेम भावना गृहस्थाश्रमी होते हुए भी त्यागमय, भक्तिमय और दिव्य थी, कवि का आदर्श ही प्रेम और भक्ति था। कवि ने प्रेम का अनुभव किया और उसीके माध्यम से भक्ति की तीव्रता प्राप्त हुई। " प्राणेश्वरी ", " कुलयोगिनी " आदि काव्यों में कवि ने अपनी पत्नी माणेक बा के प्रति कुछ दिव्य भावनाएं व्यक्त की है यहां तक की " पूजन " तक किया है -

" पूज्यो शशी, पूजुं तने रसनी सुगन्धे,
पूजी प्रकाशुं मुज अन्तर केरी वांछा " [1]

इस प्रकार सृष्टि विकास के अर्थ में कवि ने " प्रेम " का मूल्यांकन किया है। प्रणय और लग्न के संबंधों को कवि आत्म मिलन की पूर्णता तक पहुंचाना चाहता है। कवि की प्रेम भावना उदात्तगामिनी है। कवि की यह प्रेम यात्रा स्थूल से सूक्ष्म के प्रति है। प्रणयपात्र के नयनों में प्रणय की भव्यता ही लक्षित हो और नारी की आंखों में भव्य दीप्ति जागृत हो और हृदय उसमें से सात्त्विक रस की विमल ज्योति प्राप्त करे। यह रस निर्वाण की भूमिका स्थापित करनेवाला रस है। कवि को ऐसे रस में दृढ श्रद्धा है। इस प्रकार स्थूल तत्त्व को निर्वाण की भूमिका बना कर सूक्ष्म तत्त्व का निर्माण करना है। कवि उसे नमन करता है। लेकिन इस पूर्णता का प्रारंभ है लौकिक प्रेम या प्रणय से। कवि ने ऐसे प्रेम का पूर्ण रूप से वर्णन किया है -

" आज जवाने ऊठ्यो, नवझल विस्मृत, टेवाधीन,
विदाय चुम्बन लेवाने नम्यो।

---

१ न्हानालाल, दाम्पत्य स्तोत्रो, पृ० २१

उजामणीना वेल जेवी अंग संकोरती
अगर छळीने आधी ऊभी
मुखडे हैयानी उर्मिओ उछळती,
बसन्त आंज्यां नयनोमां
नवपीयूषनी छाल को छलकाती " [1]

नर और नारी की प्रणय भावना परवर्ती समय में आनंद प्राप्त करने का एक मूलाधार कवि मानते हैं । यही प्रणय भावना द्वैत भावना से अद्वैत भावना की तरफ ले जाती है । जो " प्रेम " अद्वैत भाव के प्रति अग्रसर कराता है वह " अमृत " है, " आनंद " है । कवि ने ऐसे आनंद तत्त्व को " परम प्रेम परब्रह्म "(जया जयंत) कहा है । कवि ने प्रेमावतार को प्रभु का अवतार माना है । इस प्रकार कवि इस अनुभूति को दिव्य मानता है । कवि की प्रेम यात्रा निर्मल और त्याग वृत्ति लिये हुए है, जिसमें शीतलता है ।[2]

कवि प्रणय का, नर नारी के वासनामय आकर्षण का पूर्ण रूपेण स्वागत करता है और उसे स्वर्ग समान दिव्य माना है । कवि ने जगत को प्रेमकुंज का वासी कह कर प्रणय का विश्व प्राचीन महामंत्र कहा है कि इस प्रणय तप के प्रभाव से मानव सुख प्राप्त कर अंत में अलौकिक के प्रति अग्रसर होता हुआ आनंद प्राप्त करता है । " कवि प्रणय को एक प्रकार का रसायन मानते हैं जिसमें ये पांच तत्त्वों का पूर्ण रूपेण संमिश्रण होता है (१) मोह (२) आसक्ति (३) प्राप्ति (४) काम (५) मस्ती । इन संपूर्ण तत्त्वों का आत्मीभवन हो जाता है तब प्रणय का तत्त्व हाथ लगता है अन्यथा नहीं ।"[3] देह से संबंधित प्रणय भावना आत्मपरक मानते हैं । और आत्मपरक होने के कारण उसकी यात्रा आनंद पथ के प्रति अग्रसर है ।

१ न्हानालाल, ओज अने अगर, पृ० २२-२३
२ न्हानालाल, केटलाक काव्यो, भाग-२, पृ० ३१
३ डा० धनवंत शाह, न्हानालालना काव्यमां व्यक्त थतुं जीवन दर्शन, पृ० ३३ अनूदित

" फूल गुलाबी म्हारी ओढणी, म्हेमां छूपला छाया मोर,
ढाळी दृष्टे म्हने प्रेरता ए छे मुग्ध हृदयना चोर " [1]

प्रेम की भावनाओं की तीव्रता के कारण मानव एक नया जीवन प्राप्त करता है उसका हृदय और भावनाएं प्रेम वारी से प्लावित हो जाती है –

" झीणा झरमर वरसे मेह भीजे म्हारी चुंदड़ली : "[2]

कवि ने माधुर्य भाव से आप्लावित प्रेम के भाव को
" झीणा झरमर वरसे मेह " कहा है ।

कवि को आजीवन दाम्पत्य सुख मिलता रहा अतः उनकी काव्याभिव्यक्ति में प्रेम के वियोग पक्ष का वर्णन अल्प मात्रा में मिलता है फिर भी कवि को यह दृढ मान्यता है कि विरह से ही प्रेम का मूल्यांकन होता है । विरह की तीव्रता के अनुभव से व्यक्ति उस परम सत्ता के प्रति वृत्तियों को मोडता है जो आनंद तत्त्व की विधायिनी शक्ति है ।

" वियोग की विषादपूर्ण भूमिका प्राप्त कर उत्कंठित प्रेम जब उन्नतोमुखी बनता है तब अंतर की व्यथा ऐसे ही उन्नत प्रतीक द्वारा व्यक्त होना चाहती है । ऐसे प्रसंग पर सामान्यतः प्रणय तीव्रता के आसपास केन्द्रित होती रस की नैसर्गिक भूमिका स्वयं उच्चतर दर्शन की सतह तक ऊपर उठती है । ऐसे संयोगों में विकसित होता प्रेम निरूपण का सौन्दर्य कुछ अंश में गहन आंतरिक स्वानुभूति में से प्रस्फुटित होकर जीवन की पूर्ण रूपेण सफलता के लिए तलसता है । "[3]

ळळळळळळळळळळळळळळळळ

१ ओज अने अगर, पृ० २५
२ केटलाक काव्यो, भाग-२, पृ०
३ बालचन्द्र परीख, रसदृष्टा कविवर, पृ० ८१ अनूदित

वियोग व्यथा में कितनी तपश्चर्या है, कितनी शक्ति है और वह किस प्रकार उर्ध्वगामी है यह कवि ने " ओज अने अगर " और " वसन्तोत्सव " में बतलाया है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" अगरनी रसलोलुप आंखडली
ओजने शोधवाने नीसरी
पण निर्जन गुफाओं समी
दिशाओमां भटकी पाछी वळी " [१]

" विरह एटले आत्मनुं पकवतो प्रेमाग्नि "

(इन्दुकुमार अंक-२, पृ० २५)

इसी विरह के संबंध में बालचन्द्र परीख ने लिखा है कि -

" प्रेम की अमरता का दर्शन प्रेमी के अंतर में नवीन आत्मश्रद्धा प्रेरित करता है और वियोगव्यथा से उद्भुत अपरिमित वेदना कसक, पीडाएं सहन करने की उसमें शक्ति प्रेरित करता है । वह तादात्म्य की उपासना में, वर्तमान जीवन-विषाद के गहरे प्रभाव के नीचे भी अपनी तीव्रता खोये बिना आगे बढता है और प्रेमयोग की पूर्णाहुति का अंतिम आदर्श, उसकी जिंदगी का केन्द्र बनकर, अपनी आराधना में धैर्य से टिकने की उसे प्रेरणा देता है । " [२]

कवि विरहमयि मिलन समाधि का सादर सत्कार करता है क्योंकि यहां विरह मात्र नाम का और शरीर का ही रहता है । प्रेम का मधुर तत्त्व प्राण की चेतना में पूर्ण रूप से तादात्म्य प्राप्त करता है तब पास रहे तो भी क्या और दूर रहे तो

१ बालचन्द्र परीख, रसद्रष्टा कविवर, पृ० ८२ अनूदित
२ ओज अने अगर, पृ० २४

तथा प्रेम के तत्त्व के तादात्म्य के कारण नई भावनाओं का सृजन होता है । कवि प्रेम की तुलना वसंत ऋतु से, कोयल से, मंजरी से, ऐसे अनेकों उपकरणों से करता है अर्थात् प्रेम विश्व का एक शाश्वत सत्य है । विरह में नायक और नायिका एक दूसरे की अनुपस्थिति का अनुभव कर के स्मृति के माध्यम से मिलन का सुख प्राप्त करते हैं । यही प्रेम की दिव्य और महान विभूति कवि ने स्वीकारी है । कवि " प्रिया " " प्रिया " या " प्रियतम प्रियतम " की चिल्लाहट को नहीं मानता है अपितु आंतरिक भावनाओं की महनता का मूल्यांकन करता है । निम्नलिखित पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं :-

" आत्म तारोनुं अनुकम्पी संगीत,
जीवन जीवननुं
जिंदगीनुं ए अनन्त अनवधि संगीत,
अन्तरना ए अनहद नाद
स्नेहना समाधि सिद्धो सांभळो " [1]

इस प्रकार कवि का प्रेमदर्शन दिव्य और महान है क्योंकि वह व्यष्टि से समष्टि की ओर और लौकिक से अलौकिक की ओर प्रेरित करता है ।

ब्रह्म दर्शन :

कवि न्हानालाल दाम्पत्य भावना के, प्रेम के, वसन्त के कवि थे । इसी भावना के माध्यम से कवि ने हरि को, ब्रह्म को भूमा को पहचाना है । प्रेम का यह लौकिक, वासनात्मक स्रोत अलौकिक के प्रति अग्रसर होता है और कवि नियति की महान शक्ति में तीव्र विश्वास, जिज्ञासा और तन्मयता अनुभव करता है और जिज्ञासा की पूर्ति के कारण आनंद का अनुभव करता है –

१ इन्दुकुमार, अंक-२, पृ० ११४

" म्हारां नयणांनी आळस रे, न निरख्या हरि ने जरी ;
एक मटकुं न मांड्युं रे, न ठरियां मटकी करी
शोक मोहनाअग्नि रे लधे, स्हैमां तप्त थयां :
नथी देवनां दर्शन रे कीधां, स्हैमां रक्त रह्यां " [1]

इसी प्रकार कवि ने परब्रह्म (भूमा) की दिव्यता और महानता व्यक्त की है –

" विराटनो हिन्डोळो मालकमोर :
के आमने मोभे बांध्यो दोर ;
पुण्य पाप दोर, ने त्रिलोकनो हिन्डोळो,
फरतो पून्मतडांनी फोर ;
फूनदडीए फूनदडीए विधिना निर्माण मन्त्र
टहुके तापल्यिाना मोर : " [2]

" कमंडल माहरुं खाली, म्हुं तुज अक्षयपात्र ;
दीठो भंडार मां भिक्षा, जगव्यो मैं अहालेक " [3]

इन पंक्तियों के माध्यम से यह प्रतीत होता है कि कवि दाम्पत्य भावना की सहायता से प्रेरणा प्राप्त कर हरि के प्रति, परब्रह्म के प्रति रागात्मक भावना से गतिशील बनता है। प्रभु भक्ति की भावना से प्रेरित काव्यग्रन्थ कवि ने " हरिदर्शनो " और 'वेणुविहार' लिखे हैं। इनमें कृष्ण की परब्रह्म शक्ति का और कवि की भावपरक भक्ति का परिचय दिया है जिसका विवेचन भावपक्ष के अंतर्गत विस्तृत में किया जा चुका है।

कवि न्हानालाल कृष्ण के परम उपासक थे इसलिये यत्र तत्र उन्होंने अपने काव्यों में कृष्ण के प्रति, उसे जगत् नियंता मान कर पूज्य भाव व्यक्त किये हैं। काव्यपुस्तक " बाल काव्यों " में कवि ने निर्गुण निराकार परब्रह्म की प्रार्थना

---

१ न्हानालाल, प्रेमभक्ति, भजनावलि, पृ० ३०
२ वही, पृ० १२८
३ वही, पृ० ९८

निर्व्याज प्रेम और भावनाओं से की है जो कि ब्रह्मदर्शन की भूमिका लिये हुए हैं —

" पिता ! पेलो आघे जगत वींटलो सागर रहे,
अने वैवे पाणी सकल नदीनां ए गण वहे ;
वहीं एवी नित्ये अम जीवननी सर्व भरणी
दयाना, पुण्योना तुज प्रभु ! महासागर भणी " [1]

कवि की प्रार्थनाएं परब्रह्म के प्रति भावनापरक, प्रेमपरक और अंतर की तीव्रता लिये हुए है । अपने आराध्य देव कृष्ण को कवि ने दोनों रूपों में – (१) बंसरी बजाने वाला – माधुर्य भावना का रूप और (२) सुदर्शन चक्रवाले कृष्ण अर्थात् राजनीतिज्ञ का रूप – स्वीकार किया है । [redacted] भक्ति की तीव्रता के अतिरेक में कवि पुकार उठता है –

" रंगभीना रमत्युं रमे रे सोहागना सागर ने घाट
अंतरना ऊर्मि सभी छांटे जल छालकों ;
भूले मेंही भरिलतां रसलोल " [2]

कवि की यह ब्रह्मदर्शन की यात्रा तीव्र भक्ति भावातिरेक के कारण है जिसका पूरा प्रभाव कवि ने " विराट " काव्य हरिसंहिता और " कुरुक्षेत्र " महाकाव्य में " महासुदर्शन " काण्ड के अंतर्गत बतलाया है ।

<u>" हरिसंहिता " के अंतर्गत ब्रह्मदर्शन की भावना :</u>

हरिसंहिता कवि की अंतिम वर्षों की देन है । कवि ने ६५ वर्ष की आयु के बाद इसका प्रारंभ किया । भावार्थ यह है कि वृद्धावस्था के कारण कवि ब्रह्मपरक बन गये थे । कवि की ब्रह्मपरक भावनाएं –

" आत्माए परमात्माना हैयामां हैयुं ढोळ्युं,
ढोळायां गंगानां पूर जळने जेम सागरे ।

1 न्हानालाल, नाना काव्यो, पृ० ६२
2 वही, महेरामणनां मोती, पृ० २४

" ब्रह्मनो ब्रह्म संबंध ए प्रेम भक्ति योग छे
ब्रह्मज्ञान सदाचार पाया छे प्रेमभक्तिना,
सदाचार संगे प्रेम महिमा संग भक्ति हो " [1]

आत्मा, परमात्मा से मिलने की तड़पन में तीव्र आतुरता व्यक्त करता है। यही ब्रह्मदर्शन का परम सोपान है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" "हरिवर " " हरिवर " करी टहुकारा
के आम फकोडी नाखतो रे लोल,
अमारो आतम पाडे पोकारो,
हरिवरने हेरतो रे लोल "

मारी सूनी आयुष्यनी शेरीओ, हरि । आवो ने,
मारी सूनी सौ जीवननी वाट,
हवे तो हरि।आवोने । " [2]

इन पंक्तियों में हरिदर्शन की उत्कण्ठा और ब्रह्म प्रेम की मस्ती व्यक्त की है। हरिसंहिता कवि की मुमुक्षा दशा का दर्शन है। ब्रह्मदर्शन का आद्य उपकरण और प्रथम सोपान है भक्ति या भजन। भजन के बारे में कवि ने कहा है कि

" भजन याने ब्रह्मपरायणता ; भजन याने भक्त का ब्रह्मोपासन,
भजन याने अगम्य के दर्शन का उद्गीत ; सर्व दिशाओं में
से आत्मा को संकलित कर उसका प्रकाश ब्रह्मदिशा की तरफ मोडना " [3]

ब्रह्मज्ञान से प्रभावित होकर कवि ने भूमा का, परब्रह्म का यशोगान किया है और

1 हरिसंहिता : एक शब्द सुमनांजलि, पृ० २
2 वही, पृ० ३-४
3 हरिसंहितानां प्रज्ञा अने पोयणां, पृ० १४, अनूदित

उसे सर्वशक्तिमान और अतुल प्रभावशाली बतलाया है ।

इसी प्रकार " हिरण्य गर्भ सूक्त " पूरा ब्रह्म की महिमा से भरा पडा है । [१] इसी प्रकार की परब्रह्म की स्तुतिपरक अनेकों भजन और गीत आत्मप्रेरणा से लिखे है । कवि के आराध्य देव कृष्ण होते हुए भी कवि मे व्यापक प्रेम की और भक्ति की भावना अपनाई है । पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" महासत्योए भर्यो रे । क्षणिक के सनातन छे शब्द ब्रह्म ?
ब्रह्मांड ने झूले व्हडी रे । ब्रह्मलीला खेले छे परिब्रह्म " [२]

कवि ब्रह्मदर्शन की भावना से और जिज्ञासा की तीव्रता के कारण " आनंद " प्राप्त करते थे ।

व्यास मुनि ने कृष्ण के चार स्वरूप माने हैं :- व्रजस्वरूप - भागवत् १० स्कंद्, गीता स्वरूप - महाभारत, निर्माण स्वरूप - जादवास्थली, योगेश्वर स्वरूप । कवि कृष्ण की रास लीला को आत्मा परमात्मा का रास मानता है । इस रासलीला में वह प्रकृति और पुरुष और अंत में योगमाया और परब्रह्म निहारता है । कवि की यह मान्यता है कि परब्रह्म और योगमाया के रास में से ब्रह्मांड का सर्जन हुआ है । [३]

कवि की मान्यता है कि " ब्रह्म का बाह्य आवरण ब्रह्मांड " है । विश्व यह परमात्मा का विभुदेह है । मानवजन्म, यह ब्रह्मजन्म प्राप्त करने के लिये है । सत् याने प्रभु और असत् याने माया । जगत की रचना अर्थात् सत् असत् का सम्यक् सम्मिश्रण ।" [४]

---

१ द्रष्टव्य - हरिसंहिता भाग-१, पृ० ६ (न्हानालाल)

२ वही, पृ० २७ (न्हानालाल)

३ न्हानालाल, " विश्वगीता " अंक-२, पृ० ४

४ न्हानालाल, इन्दुकुमार, अंक-२, पृ० २६

कवि की मान्यता है कि ब्रह्म और जगत दोनों सत्य है। कवि ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या में नहीं मानते।

" कवि ब्रह्मांड को विराट का भुमा का एक बडा झूला मानते हैं और उसे पुण्य और पाप की दो रस्सीयां बंधी हुई है। ब्रह्मांड में अनेक लोग है और उनमें पारस्परिक संबंध है। "[1]

" कवि की प्रणय भावना केवल व्यष्टि में पूर्ण नहीं होती अपितु उसका संबंध समष्टि के साथ है वह प्रेम को स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों में मानता है कवि प्रेम को विश्व का मंत्र कहता है वह सृष्टि की ज्वास को परब्रह्म स्वरूप मानता है। "[2]

हरिसंहिता के अंतर्गत जो १५ उपनिषदों का वर्णन है उन सब में ब्रह्म, ब्रह्मांड, विराट, संसार, माया आदि का वर्णन है। कवि की ब्रह्मदर्शन की तीव्रता और आंतरिक भावुकता इन उपनिषदों में पूर्ण रूप से प्रवाहित और प्रभावित है। कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं -

" लोके लोके मही मही मां झूलाय तो,
जीवात्मानां परमात्म उतारतो,
मृत्युलोके अमृतलोक लावतो,
ब्रह्माग्निनो जीवन एह यज्ञ छे "

(जीवनोपनिषद्)

---

१ न्हानालाल, विश्वगीता, विष्कंभक, पृ० ५

२ कवि न्हानालालना भावप्रधान नाटको, डा० ईश्वरलाल दवे, पृ० २५२ अनूदित

" आकाश आखुं आंखडीमां समाशे,
ब्रह्मांड ज्यारे समाशे ज्ञानकोठी मां ;
तेज समाशे पर्ण कुटी महीं ज,
त्यहारे समाशे परिज्ञेय आत्म मां ।

ज्ञानपराने ज्ञानीओ प्रीछशे को ?
ज्ञानपराने ज्ञानी प्रीछावशे को ?
अज्ञेय नथी, ल्होय ज्ञानपरो ए ;
सौ ज्ञाननुं ज्ञान, ज्ञान अज्ञाननुं ए "

(ज्ञान विज्ञानोपनिषद ")

निष्कर्ष यह है कि कवि के अंतर में भक्ति भावना से प्रभावित ब्रह्मदर्शन और परब्रह्म की भावना अति तीव्र है, उस तीव्रता के अतिरेक में कवि तडप भी उठते थे । कवि की जिज्ञासा, तीव्र तडपन हृदय की परम आकुलता ये ब्रह्मदर्शन के मुख्य उपकरण हैं । कवि ने गहनता उपनिषद में बतलाया है कि

" मौन ने सांभळो, अगम्य ने पेखो, अणउकल्युं वांचो,
अगोचर ने स्पर्शो, आभ पडदाओनी भीतर नीरखो "

इन्द्रियो पेले छे एथी बुद्धि अधिकुं
ने ऊंडेरुं पेले छे, सांभळी रह्यो आ छेल्लो
छेल्लो बोल : अगम्य वांचे ए आत्मा " [1]

कवि की ब्रह्म यात्रा दाम्पत्य भाव से होती हुई परब्रह्म की तरफ गतिशील रही है ।

ब्रह्मदर्शन की पूर्ण प्रतीति करानेवाला और पूर्ण आध्यात्मिक वर्णन " कुरुक्षेत्र " महाकाव्य के " महासुदर्शन " काण्ड में है । महामुनि व्यास ने भगीरथी

1 शिवशंकर प्राणशंकर शुक्ल, हरिसंहिताना उपनिषदो, पृ० २१

के पवित्र जल में उतर कर ग्लानि से पूर्ण पांडवों को गंगा के किनारे बुलाया और वहां महासुदर्शन का दर्शन करा कर उनकी ग्लानि दूर की । व्यास मुनी ने कहा-

" धर्मदेव । आ महासुदर्शन
कुरुक्षेत्रना कर्पाण संहार
प्राणने विषाद् विष थाय छे,
निरखो आ ब्रह्मांडोनां सृजन ने संहार "

" परमाणु पांगरी पत्थर थाय छे,
पत्थरमांथी पर्वत प्रगटे छे,
पर्वत प्रफुल्ली लोक लोक सरजाय छे,
दुनियांओ दळाइ दळाइ
पाछां परमाणु ढोळाय छे :
ए सृजन संहारनो महाचक्रावो :
जन्म मृत्यु एटले जीवनलीला ।
दिशा चक्रावे घूमतुं विराटचक्र कहे छे
राजन् । जन्म मृत्यु थी पर जो,
त्यहां छे परमानन्दना देशे । " [1]

तालाब में से जोगमायायें निकली थी उन्हों ने महासुदर्शन चक्र की आरती उतारी ।

उपर्युक्त पंक्तियों में आज के युग का अणु-परमाणुवाद के प्रति संकेत है और परब्रह्म ही परमानन्द का देश है यह बतलाया है ।

सुदर्शन चक्र का दर्शन करने के बाद, व्यास मुनि ने अपने प्रभाव से उसे गतिशील बनाया और वह तीव्र गति से घूमने लगा उसकी घूमती हुई दंतमाला को देख कर पांडवों को बडा आश्चर्य हुआ । इस प्रसंग में व्यास मुनि ने सुदर्शन चक्र के मध्य से

१ न्हानालाल, कुरुक्षेत्र, महासुदर्शन, पृ० १६

कृष्ण को दिखला कर परब्रह्म का स्वरूप दिखाया और यह विश्व, परब्रह्म की लीला बतलाई। सुदर्शनचक्र का एक एक दंत ब्रह्म अंगुलि के समान था, और प्रत्येक दंत पर " विश्व कल्याण " मंत्र लिखा हुआ था। इस प्रकार कवि ने परब्रह्म के माध्यम से विश्व कल्याण की भावना व्यक्त की है।

उसी सुदर्शन चक्र में व्यास मुनि ने पांडुपुत्रों को उनके पितृप्रवरों के दर्शन कराये उनकी आँखों से आशीर्वाद की वर्षा होती थी। फिर अदृश्य में से जोगमायाएं आई और चक्र के प्रत्येक दंत पर प्रत्येक बैठ गई। वे जोगमायाएं भयंकर नहीं अपितु मंगलकारिणी थी। मुनि ने पुनः कहा

" पृथ्वी मूर्ति पृथाना पुत्रो
चैतन्यना पूर्णचन्द्र, अमृतना वर्षणहार
निरखो ब्रह्मांडना आ ब्रह्मांडनाथ
एज छे दर्शन मात्रना सार सर्वस्व,
ऐज छे विश्व आंखडलीनुं अजवाळुं "[1]

इस ब्रह्मदर्शन में सुदर्शनधारी कृष्ण नहीं अपितु लोककल्याण के कृष्ण बतलाये हैं और उनका रूप परब्रह्म का रूप बतलाया है। पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

ब्रह्मांड छलकता परब्रह्म विराजता
प्रकृति एमने पल्लवे पल्लवे प्रफुल्लती
देहने वस्त्रालंकारना आभरण आवरे
जीवात्माने प्रारब्धना पड चढे,
एम ब्रह्मने ब्रह्मप्रकृति आवरती
ब्रह्मांड भरी उछरती हती ए ब्रह्मलीला "

१ न्हानालाल, महासुदर्शन, पृ० ५१

मुनि ने कहा :-

" पृथ्वी पराक्रम वन्ता मानव मेघ ।
निरखो परब्रह्मनी आ आनन्दलीला,
सृष्टा ने सृजननी आ रसरमणा " [1]

परब्रह्म कृष्ण का दर्शन करके एक आनन्द प्राप्त करो । भावार्थ यह है कि परब्रह्म की प्राप्ति के बाद मनुष्य को आनंद ही प्राप्त होता है उसे सांसारिक विघ्न बाधाएं हरकत नहीं करती । यही जीवन की परम शान्ति है परम कल्याण है । इस प्रकार आनंद का पूर्ण अनुभव करके धर्मराज ने कहा :-

" ज्यहां ब्रह्मर्षिनी ब्रह्मदृष्टि छे,
ज्यहां पुरुषोत्तम ना पराक्रम छे,
त्यहां अखंडम्होरन्ती आनंदलक्ष्मी छे " [2]

परब्रह्म की पूर्ण अन्विति आनंद में होती है । संसार में अनेक प्रकार की बाधाएं आती हैं, उतार चढाव आते हैं, अनेक युद्ध होते हैं, लेकिन इन सब का अंत आनन्द में है । ब्रह्मांडनाथ की यही पवित्र धारणा है, पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :-

" ब्रह्मांड भाले भाग्यना आंकडा पाडतुं,
परब्रह्मनुं विराट सुदर्शन
ब्रह्मांड चक्रावे चडेलुं हतुं,
महीं कंइ कंइ महासृष्टिओ
संहारती ने सरजाती ।
महाप्रलयनां भरती ओट थता
युगना युग उगता ने आथमता,
ने एक युगपलटाना धूपछांव पलटाता

1 न्हानालाल, महासुदर्शन, पृ० ५२-५३
2 वही, पृ० ५५

जगतनी जोगमायाओ
मृत्युनां एमां ओरणां ओरती
ए काळचक्कीमां मृत्युनां ये मृत्यु थतां
ए ब्रह्मांड चक्रनो एक ज धोर हतो, आनन्द "

अंत में मुनि ने कहा -

" महिमा म्होयों मनुवंशना, महाभाग सपूत ।
प्रारब्धना परम पाठ
एटलेज आयुष्यनी आनन्द लीला " [1]

सारांश यह है कि व्यास मुनि ने महासुदर्शन के व्याज में परब्रह्म, भूमा, कृष्ण का दर्शन कराकर उसका परम पवित्र ध्येय आनन्द है, यह बतलाया है । संसार के उत्थान, पतन, युद्ध आदि भौतिक है इसलिये मानव परब्रह्म की भावना का साक्षात्कार करके आनंद की ओर अग्रसर रहे जो जीवन का हेतु है ।

निष्कर्ष : तुलनात्मक विश्लेषण

प्रस्तुत अध्याय में श्री जयशंकर प्रसाद तथा कवि न्हानालाल की काव्य-कृतियों में निहित सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना और दार्शनिक पक्ष का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है, उससे दोनों की स्वतंत्र विशेषताएं प्रकाशित होती हैं । निश्चय ही दोनों कवियों का युगान्तरकारी व्यक्तित्व उभर कर आता है । दोनों की काव्य-चेतना के पूर्वोक्त विविध उपकरणों में समानता एवं भिन्नता भी है लेकिन फिर भी दोनों कवि आधुनिक नवोत्थानवादी वातावरण की देन है । प्राचीनता किंवा आधुनिकता - दो में किसी एक के प्रति पूर्वाग्रह की वृत्ति दोनों में नहीं मिलती

---

१ न्हानालाल, महासुदर्शन, पृ० ५८-५९

प्रसादजी ने अपने काव्यों में " जीवन दृष्टि की देन " यह सूत्र दिया है । प्रसाद जी मानव जीवन में चेतन आनंद की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं और ऐसा आनंद स्वस्थ जीवन दृष्टि से ही प्राप्त होता है । प्रसादजी ने भावना और बुद्धि का पूर्ण रूपेण सामंजस्य साधा है । कवि न्हानालाल ने व्यावहारिक और मानवतावादी तत्त्व बिखेरे हैं । वे विश्व कल्याण की भावना के परम आग्रही है फिर भी दोनों कवियों की भारतीय दृष्टि और भारतीय संस्कारों में पूर्ण रूपेण समानता लक्षित होती है ।

(१) सामाजिक चेतना :

कवि प्रसाद और कवि न्हानालाल की काव्यकृतियों में सामाजिक चेतना का पर्याप्त मात्रा में साम्य प्रतीत होता है । दोनों कवियों की एकता, समता, मानवता, विश्व बंधुत्व की भावना उनके काव्यों में यत्र तत्र फैली हुई दिखाई देती है । प्रसाद की उपर्युक्त सभी भावनाएं " कामायनी " में मिलती हैं और न्हानालाल की सामाजिक चेतना से संबंधित भावनाएं " राजसूत्रोनी काव्य-त्रिपुटी ; चित्रदर्शनो, कुरुक्षेत्र, हरिसंहिता और उपनिषदों में प्राप्त होती है । इसी प्रकार सामाजिक चेतना से संबंधित पुरुषार्थपरता, आशावादिता, सदाचार आदि भावों की समानता प्रतीत होती है जिनके उदाहरण इस अध्याय के अंतर्गत दिये जा चुके हैं । " नारी भावना " जो सामाजिक चेतना का महत्त्वपूर्ण अंग है उस संबंध में दोनों कवियों का भाव साम्य लक्षित होता है । इस प्रकार सामाजिक चेतना के अनेक उपकरण दोनों कवियों में पर्याप्त मात्रा में मिलते-जुलते हैं । सम्भवतः इसका कारण समान कालधर्मिता रही हो ।

उपर्युक्त साम्य के होते हुए भी निजी संस्कारों तथा अध्ययन-सरणि के परिणामस्वरूप उनकी सामाजिक चेतना में यत्किंचित् अन्तर भी लक्ष्य किया जा सकता है । प्रसादजी के जीवन को प्रभावित करनेवाला मुख्य उपकरण - बौद्ध ग्रन्थों का प्रभाव और शैव दर्शन । बौद्ध ग्रन्थों के प्रभाव से और गौतम बुद्ध के जीवन से

प्रसाद में जो मानवतावादी संस्कार – सत्य, दया, अहिंसा थे । वे दृढ से दृढतर और दृढतम बने । ये तत्त्व प्रसाद काव्य में सामाजिक चेतना के अंतर्गत परिलक्षित होते हैं । बौद्ध ग्रन्थों के प्रभाव से वे " स्व " का उत्सर्ग कर के " पर " के प्रति उन्मुख हुए । शैवदर्शन के प्रभाव से प्रसाद में श्रद्धा, भक्ति, ब्रह्म के प्रति प्रेम और जिज्ञासा आदि उच्च और दिव्य भारतीय तत्त्वों को जीवन में उतारे ।

न्हानालाल वैष्णव ग्रन्थों की वैष्णवी भावना से प्रभावित हुए । पिता की ओर से उनको स्वामीनारायण संप्रदाय के संस्कार प्राप्त थे । वे सच्चे अर्थ में " पीड पराई जाननेवाले " वैष्णव थे और उनको मानवता के संस्कार वैष्णव ग्रन्थों से, कृष्णभक्ति से और राष्ट्रीय नेताओं के संपर्क में आने से प्राप्त हुए । अतः युग गत प्रभाव से समान सामाजिक भूमिका के बावजूद भी उक्त दृष्टिकोण की भिन्नता के कारण व्यावहारिक समायोजन के मार्ग अलग अलग थे । गांधीजी से प्रभावित होकर उन्होंने " गुजरातनो तपस्वी " जैसा आदर्श काव्य लिख डाला फिर बाद में उनका गांधीजी से विचारों के मतभेद के कारण मनमुटाव हो गया था । कवि की मानवतामूलक भावनाएं उनके काव्यों में पूर्ण रूप से द्रष्टव्य हैं । किन्तु प्रसाद का ~~चिन्तन~~ चिन्तन सांस्कृतिक परम्परा से कहीं अधिक अनुप्राणित है । उन्होंने मनोवैज्ञानिक स्तर पर मानवीय वृत्तियों का वर्णन कर उन्हें सामाजिक स्तर पर लाने का प्रयास किया है । उदाहरणार्थ " कामायनी " में चिंता, आशा, श्रद्धा आदि । ये वृत्तियां मानव की सर्वसामान्य वृत्तियाँ हैं और इनका संस्कार करके मानव किस प्रकार उत्कर्ष करता है यह लक्ष्य किया गया है । अतः इस सन्दर्भ में दोनों के परस्पर भिन्न जीवन-दर्शन को निजी विशेषताओं के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । सामाजिक चिन्तन में एक अन्तर और भी है । प्रसाद ने मानव चेतना के विश्लेषण में मनोविज्ञान का सुन्दर सुयोग किया है, जबकि कवि न्हानालाल के काव्य में वैसे मनोवैज्ञानिक एवं सूक्ष्म विश्लेषण का अभाव है ।

(२) राष्ट्रीय चेतना :

दोनों भी कवि दासता के युग में होते हुए भी दोनों के अंतर राष्ट्रीय

भावना से ओतप्रोत थे । दोनों ने अपने काव्यों और नाटकों में भारत माता की दिव्यता और प्रतिभा प्रतिपादित की है । दोनों कवियों ने उस इतिहास को सिद्ध करके बतलाया है कि आर्य लोग मध्य एशिया से या उत्तर ध्रुव से नहीं आये थे अपितु यहीं के रहनेवाले थे । कवि प्रसाद ने नाटकों के गीतों में और न्हानालाल ने " इन्दुकुमार " अंक १-२ में भारत वर्ष का पूर्ण रूप से यशोगान किया है । स्वदेश प्रेम एवं राष्ट्रीयता की भावना " कामायनी " में स्थान स्थान पर व्यक्त हुई है । " राजनीतिक व्यवस्था संपूर्ण जीवन-व्यवस्था या सभ्यता का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । इसके अभाव में देश में वह परिस्थिति संभव नहीं जिसमें सभ्यता फूलती फलती है और वास्तविक सांस्कृतिक उन्नति संभव होती है । "[1] भारतीय इतिहास और दर्शन दोनों ही राष्ट्रीय संस्कृति के अविच्छिन्न अंग बन गए हैं । जहां कहीं दार्शनिक विवेचन है, वहां मानव-जीवन और इतिहास की पृष्ठभूमि अवश्य है और जहां कहीं किसी राष्ट्रीय मानवीय उद्योग का आकलन है, वहां भी दर्शन का साथ कभी नहीं छूटा । दोनों कवियों में इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना, इतिहास-दर्शन का साम्य परिलक्षित होता है । राष्ट्र के अंतर्गत युगीन तत्त्व समाजवाद, संघर्ष, अणुपरमाणुवाद आदि तत्त्व भी दोनों की काव्य कृतियों में प्राप्त होते हैं जिसका यथास्थान वर्णन किया गया है । राष्ट्र के मुख्य उपकरण है - मानव और मानव समाज । दोनों कवियों ने मानव और मानवसमाज को लक्ष्य करके मानवतावादी और समाजवादी दृष्टि अपनाई है । राष्ट्र पर शासन मानव मन का होना चाहिए ये दोनों की मान्यता थी और एकता और स्वतंत्रता दोनों अन्योन्याश्रित है ये दोनों ने अपने काव्यों में प्रतिपादित किया है । " कामायनी " महाकाव्य राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त है उसी प्रकार " कुरुक्षेत्र " और इन्दुकुमार अंक १-२ में कवि न्हानालाल ने राष्ट्रीय भावधारा का पूर्ण रूपेण स्वागत किया है ।

प्रसादजी की राष्ट्रीय भावना पूरे भारत के प्रति है ; जो नाटकों के

---

१ डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, जयशंकर प्रसाद, वस्तु और कला, पृ० २०१

गीतों में द्रष्टव्य हैं । न्हानालाल ने भी भारत का यशोगान बड़ी तीव्रता से इंदुकुमार अंक-१-२ में किया है लेकिन उनकी राष्ट्रीय दृष्टि गुजरात और सौराष्ट्र से होती हुई भारत पर टिकती है । भारत की दिव्यता और भव्यता में वे गुजरात के न होकर पूर्ण रूप से भारतीय बन जाते हैं । उन्होंने अपने काव्यों में गुजरात का, सौराष्ट्र का, गिरनार का, नर्मदा का और उससे संबंधित प्राकृतिक सौंदर्य का जितना वर्णन किया है उतना हिमालय या गंगा का नहीं अर्थात् न्हानालाल की दृष्टि प्रादेशिक सीमा से यात्रारम्भ करके महान की ओर गतिशील रही है । प्रसाद प्रारम्भ से ही महानता और दिव्यता के प्रति अग्रसर माने जाते है ।

दार्शनिक चेतना - प्रेमदर्शन :

दार्शनिक चेतना के अंतर्गत " प्रेम " का प्रभाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । यह लौकिक, मांसल प्रेम नहीं अपितु परब्रह्म के प्रति उत्कट प्रेम की भावना । यह भावना एकाएक प्राप्त नहीं होती उसका मार्ग लौकिक और मांसल से होता हुआ अलौकिक और अध्यात्म के प्रति अग्रसर होता है । दोनों कवियों ने इसी प्रकार की प्रेमभावना को अपना कर अंत में उसकी परिणति ब्रह्म या ब्रह्मदर्शन के प्रति व्यक्त की है । दोनों कवि " प्रेम " और सौंदर्य " के कवि माने जाते हैं ; जिसका विस्तृत विवेचन - भावपक्ष के अंतर्गत किया है यहाँ सिर्फ प्रेमभावना का दोनों कवियों का लौकिक और अलौकिक साम्य बतलाया है । कवि द्वय की प्रेम भावना की यात्रा समान थी । लौकिक से अलौकिक की ओर और माया से परब्रह्म की ओर थी । प्रसादजी ने अपने जीवन में लौकिक प्रेम का अनुभव किया उससे उनको " सुख " प्राप्त हुआ जिसे दार्शनिक लोग " क्षणिक सुख " कहते हैं लेकिन जब उत्तरावस्था में अलौकिक प्रेम का अनुभव किया तब उनको " आनंद " प्राप्त हुआ जो शाश्वत है सच्चिदानंद का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । यह वर्णन " कामायनी " में प्राप्त है । कवि न्हानालाल ने अपनी पत्नी माणेक बहन से लौकिक प्रेम किया जिससे उनको गार्हस्थ्य सुख, घर की

अनुपम व्यवस्था, संतति आदि सुफल प्राप्त हुए लेकिन वह जागतिक सुख था। उत्तरावस्था में श्री हरि से तादात्म्य होने पर " आनंद " प्राप्त हुआ जिसका वर्णन " हरिसंहिता " में है। भावार्थ यह है कि दोनों कवि " प्रेम " के निर्णायक और विधायक तत्त्वों को समझे थे और उनको जीवन में उतारे थे। दोनों की दृष्टि दुन्यवी सुख का त्याग और आनंद की प्राप्ति रही है। दोनों भारतीय संस्कृति के प्रणेता के रूप में " प्रेम " की दिव्यता, महानता और मौलिकता के पक्षपाती थे जो आनंद के प्रति अग्रसर करता है।

ब्रह्म दर्शन :

दोनों कवियों ने ब्रह्म दर्शन और परब्रह्म की भावना का अपने जीवन में अनुभव किया था। कवि प्रसाद ब्रह्म को नियति, भूमा आदि शब्दों से अभिहित करते हैं और न्हानालाल उसे ब्रह्म, परब्रह्म कहते हैं। उन्होंने कृष्ण को परब्रह्म या जगन्नियन्ता ही माना है।

कामायनी में प्रसादजी ने " शिव ताण्डव नृत्य " का दर्शन दिखाकर नारी के माध्यम से इच्छा, ज्ञान और क्रिया का समन्वय बतलाया है। सर्वप्रथम ये तीनों तत्त्व (इच्छा, ज्ञान, क्रिया) अलग अलग बतलाये हैं। श्रद्धा की स्मित रेखा से ये तीनों एक रेखा में मिल गये। इस प्रकार प्रत्यभिज्ञादर्शन के माध्यम से समरसता और आनंदवाद की पुष्टि होती है। इसी प्रकार की मिलती जुलती भावना कवि न्हानालाल ने " कुरुक्षेत्र " महाकाव्य में " महासुदर्शन " काण्ड के अंतर्गत बताई है। कृष्ण का " महासुदर्शन " विश्वबंधुत्व का प्रतीक बतलाया है। जोगमायाएं सुदर्शन चक्र की आरती उतारती है। चक्र के मध्य में भगवान कृष्ण परब्रह्म स्वरूप बैठे हैं। चक्र गतिशील बतलाया है। सुदर्शन चक्र का एक ही शब्द था " आनन्द " भावार्थ यह है कि किसी भी प्रकार से दोनों कवियों ने परम तत्त्व " आनन्द " ही माना है। प्रसादजी ने प्रत्यभिज्ञादर्शन के माध्यम से समरसता और

समन्वय बतलाये हैं, न्हानालाल ने सुदर्शन चक्र के माध्यम से विश्वबंधुत्व की भावना बतलाई है। शब्दों में भिन्नता है लेकिन भाव साम्य प्रतीत होता है। संक्षेप में दार्शनिक दृष्टि से दोनों कवियों की दार्शनिक भावना में पर्याप्त साम्य पाया जाता है। कामायनी का अंतिम सर्ग " आनंद " है जो भावना विशेष को स्पष्ट करता है और " कुरुक्षेत्र " का अंतिम सर्ग " महासुदर्शन " है जो प्रतीक के रूप में विश्व-बंधुत्व और आनंद के प्रति संकेत करता है। प्रसादजी ने नारी के रूप में श्रद्धा को अग्र स्थान दिया है। न्हानालाल ने नारी समूह के रूप में जोगमायाओं को महत्त्व-पूर्ण स्थान दिया है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया के अलग अलग होने से आनंद नहीं मिलता जब वे एक होते हैं तब आत्मानंद प्राप्त होता है। निम्नलिखित पंक्तियां यहां उल्लेखनीय हैं –

प्रसाद : " ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की "

(कामायनी, रहस्य, पृ० २८०)

न्हानालाल : " भाव वेण ने कर्म —
ए त्रिसारना संगीतो न्होतरशे
त्यहारे दुनियामां देवो अवतरशे
हैयामां हलाहल एक ;
मुखडे मधुदान बीजां ;
ने कर्मे कार्पण्यता त्रीजी ;
असुर श्रयोनी एवी
मनुनी उपासना आदरी छे आज "

(ओज अने अगर, पृ० ७२)

प्रसादजी ने समरसता और समन्वय की भावनाएं बतलाई हैं और न्हानालाल ने विश्वबंधुत्व की। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो एक में शैव दर्शन है तो दूसरे में गांधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है।

दोनों कवियों का दार्शनिक चेतना में पर्याप्त साम्य होते हुए भी भिन्नता प्रतीत होती है, प्रसादजी ने तांडव नृत्य के माध्यम से प्रत्यभिज्ञादर्शन का वर्णन करके समरसता, समन्वय और आनन्दवाद का मार्ग बतलाया है। न्हानालाल ने " महासुदर्शन " का दृश्य बतला कर जोगमाया आदि का वर्णन कर विश्व कल्याण की भावना उभारी है, लेकिन अंत " आनंदवाद " ही माना है। प्रसाद जी ने निर्गुण, निराकार, परब्रह्म, भूमा का प्रभाव दिखलाया है। न्हानालाल ने कृष्ण को ही परब्रह्म-भूमा माना है। वे कृष्ण के तीन स्वरूप मानते हैं। बंसरी बजानेवाले कृष्ण - " वेणु विहार " और " हरिदर्शन " में ; सुदर्शन चक्रवाले कृष्ण " कुरुक्षेत्र " में। भारत के तीर्थों की पुनर्नवता और पवित्रता का आदर्श देनेवाले समाज सुधारक कृष्ण " हरिसंहिता " में। इसी प्रकार से अलग अलग रूपों में शिव का वर्णन प्रसाद ने कहीं भी नहीं किया। जहां भी मिलता है वहां परब्रह्म के रूप में और भूमा के रूप में प्रसादजी ने भावना और बुद्धि का सामंजस्य दार्शनिक चेतना के अंतर्गत बतलाया है। न्हानालाल का दृष्टिकोण भावुक और भक्तिभाव का ही रहा है ; भावना के अतिरेक में वे बौद्धिक पक्ष को प्रायः विस्मृत कर गये हैं। तत्त्वज्ञान की जितनी गहरी पैठ प्रसाद की थी उतनी न्हानालाल की नहीं। हां ; इतना अवश्य है कि न्हानालाल की भक्ति की तीव्रता और गहनता प्रसाद से अधिक थी सम्भवतः अवस्था विशेष का भी धर्म रहा हो क्योंकि न्हानालाल ६९ वर्ष तक जीवित रहे और प्रसाद सिर्फ ४८ वर्ष। उनकी दार्शनिक चेतना, भक्तिभाव प्रवाहित और मानवीय है। और प्रसाद की दार्शनिक और तात्त्विक, लेकिन दोनों ने अंतिम ध्येय आनंद ही बतलाया है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि दोनों कवियों की सामाजिक, राष्ट्रीय और दार्शनिक चेतनाओं में बहुत कुछ साम्य है। दोनों कवियों ने आदर्श रूप में और विश्वबंधुत्व और मानवकल्याण के लिए इन चेतनाओं का उपयोग किया है। मनोविज्ञान और तत्त्वविज्ञान को प्रसाद जी ने पूर्ण रूप से आत्मसात् किया था। न्हानालाल का क्षेत्र इतिवृत्तात्मक था। दाम्पत्य भाव की पूर्णता के कारण गृहस्थाश्रम का निर्बाध विलास न्हानालाल में द्रष्टव्य है, प्रसाद का यह क्षेत्र उजड़ा हुआ था। जीवन संघर्ष प्रसाद काव्य की मुख्य देन है इसके विपरीत प्रसन्न दाम्पत्य और उसके व्याज से सामाजिक चेतना और समाजसेवा का आदर्श न्हानालाल की देन है।

००००००